

पूर्वी भारत (श्रमण संस्कृति की शलाका भूमि)

नास्ताम् कदाचि दुपयासिन राहुगम्यः स्पष्टिकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।

नाम्भोधरोधर-निरूद्ध-महाप्रभावः सूर्यातिशायि-महिमाऽसि भुनीन्द्रलोक ।।

प्राची दिशा से सूर्य प्रतिदिन उदित होकर सारे जगत को आलोकित करता है लेकिन उसका यह प्रकाश सीमित क्षेत्र में होता है, कभी राहू से ग्रसित होता है, कहीं बादलों में ढँक जाता है परन्तु तीर्थकरों के ज्ञानरूपी सूर्य के प्रकाश को कोई भी पदार्थ अवरुद्ध नहीं कर सकता है। उनका ज्ञानरूपी सूर्य तीनों लोकों के सभी पदार्थों को तीनों कालों में एक साथ प्रकाशित करता है। एक बार डॉ० एनी वेसेन्ट से किसी जिज्ञासु ने पूछा कि क्या आप बताएंगी कि विश्व के पुराने और नये देशों में भारत का क्या वैशिष्ट्य है जबाव में उन्होंने कहा— भगवान ने भारत को जो दिया है वह किसी भी देश को नहीं दिया, किन्तु जो दूसरे देशों को दिया है वह सब भारत को दिया है। परमेश्वर ने यूनान को सौन्दर्य, रोम को विधि, इजराईल को मजहब और भारत को एक ऐसा धर्म प्रदान किया है जिसमें समस्त सृष्टि का योगक्षेम और प्राणी मात्र को धारण करने की शक्ति है। वास्तव में यदि हम देखे तो भारत के पास ऐसा तत्त्वज्ञान का दर्शन है जिसमें समस्त जड़ और चेतन निहित है और यह तत्त्वज्ञान हमें हमारे तीर्थकरों के दिव्य ज्ञान से प्राप्त हुआ है। जिन्होंने तप, त्याग और साधना द्वारा केवलज्ञान अर्जन किया सर्वज्ञ बनने के बाद जिन सनातन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया उन्हीं के कारण आज भी भारत को वैचारिक क्षेत्र में दुनियां में सबसे महान माना जाता है।

उत्तराध्ययन सूत्र में अन्तिम तीर्थकर भगवान महावीर के केवल ज्ञान के विषय में उनके शिष्य सुधर्मा स्वामी से जम्बू स्वामी ने पूछा कि भगवान महावीर स्वामी का ज्ञान दर्शन कैसा था, उनका आचार कैसा था, आप इस विषय में यथातथ्य जानते और सुना भी है अतः कृपा कर बताइयें? जबाव में सुधर्मा स्वामी ने कहा हे जम्बू भगवान महावीर स्वामी संसारी जीवों के दुःखों को जानने में कुशल थे। वे महायशस्वी भगवान अनन्त ज्ञानी अनन्त दर्शी और महान ऋषि थे। उनको अर्हन्त दशा में सूक्ष्म पदार्थ भी आँखों के समान देखने वाले जानो और उनके धर्म तथा संयम की दृढ़ता को विचारो।

उन केवलज्ञानी भगवान ने ऊंची नीची और तिरछी दिशा में जो त्रस और स्थावर प्राणी हैं, उनको नित्य और अनित्य रूप से जानकर उनके आधार के लिये धर्म रूपी द्वीप का सम्यग् रूप से प्रतिपादन किया।

वे सर्वदर्शी भगवान, अप्रतिहत केवलज्ञान वाले और निर्दोष चारित्र वाले थे, वे परम धीर प्रभु अपनी आत्मा में स्थिर, परिग्रह से रहित, निर्भय, आयु रहित और समस्त पदार्थों के उत्कृष्ट ज्ञाता थे।

वे महान बुद्धिमान प्रभु, अप्रतिबद्ध विहारी, संसार समुद्र से तिरने वाले, परम वीर, और अनन्त ज्ञानवान थे। वे सूर्य एवं वैरोचन अग्नि की तरह अज्ञान रूप अन्धकार का नाश करके ज्ञान का प्रकाश करने वाले थे।

भगवान महावीर की सर्वज्ञता के विषय में बौद्ध ग्रन्थ माज्झि मनिक्कय भाग १ पृष्ठ ६२/६३ में लिखा है।

निर्ग्रन्थ ज्ञात पुत्र सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है, वे अशेष ज्ञान और दर्शन के ज्ञाता हैं। चलते, ठहरते, सोते, जागते समस्त अवस्थाओं में सदैव उनका ज्ञान और दर्शन उपस्थित रहता है।

तीर्थकरों के इसी ज्ञान के प्रकाश से प्राच्यभूमि इतिहासतीत काल से सदियों तक प्रज्वलित रही। पौरविक भारत की इस गौरवमय इतिहासिक परम्परा को जानना और उसे पुनः स्थापित एवं प्रतिष्ठित करना ही मेरा आज का विषय है है।

अथर्ववेद में ब्राह्मणों का प्रियधाम प्राची दिशा को बताया गया है—

..... प्रियं धाम भवति तस्य प्राच्यं दिशि।

—अथर्ववेद १५।२।१।५

अर्थात् ब्राह्मणों का प्रिय धाम प्राची दिशा है।

श्रमण संस्कृति में व्रत धारण करने के कारण श्रमणों को ब्राह्मण कहा गया। ये ब्राह्मण ही निर्ग्रन्थ, जिन और अर्हत कहलाए। इन ब्राह्मणों की साधना भूमि पूर्वी भारत के मगध, अंग, बंग और कलिंग के क्षेत्र थे। यद्यपि ये लोग देश के और भागों में भी फैले हुए थे लेकिन उनकी कर्मभूमि सदियों तक पूर्वी भारत ही रही। इस क्षेत्र के ब्राह्मणों के लिये भी ब्राह्मण सूत्रों में इस बात का उल्लेख है कि प्राच्य देश के ब्राह्मण वेद और याग-यज्ञ को आसानी से छोड़ देते हैं अर्थात् पतित हो जाते हैं। ज्ञातव्य है कि भगवान महावीर के प्रमुख गणधर इन्द्रभूति, वायुभूति, अग्निभूति, सुधर्मा स्वामी आदि मगध के प्रसिद्ध ब्राह्मण विद्वान थे जिन्होंने निर्ग्रन्थ धर्म को अपनाया था। जैनोत्तर ग्रन्थों में प्राच्य देश में ब्राह्मणों का जाना निषिद्ध माना गया था क्योंकि ये श्रमण संस्कृति से प्रभावित क्षेत्र थे। पूर्वी भारत उस समय एक ऐसा आईना था जिसके सामने जाने पर व्यक्ति को अपना सही चेहरा दिखाई दे जाता था। ब्राह्मण अपने को वेद ज्ञानी मानते थे लेकिन प्राच्य भूमि में जाकर वहाँ की संस्कृति और ज्ञान के वैभव के दर्शन से उनको अपना ज्ञान उसके सामने नगण्य दिखाई पड़ता। इसीलिए आइने में वस्त्र पहने हुए भी वस्त्र विहीन दशा यानि अपने प्रकृतस्वरूप के दर्शन होने के भय से ब्राह्मणों को वहाँ जाना निषिद्ध लिखा गया। स्वर्गीय नेमिचंद्रजी जैन के शब्दों में— अंग, बंग, मगध, उत्कल को छोड़ जो आर्य थे, उनमें वस्तुतः धर्म की रागात्मक छवि का ही विकास अधिक हुआ था, उसका चिन्तनात्मक / ज्ञानात्मक / दार्शनिक पक्ष उनमें पूरी तरह खुल / उघड़ नहीं पाया। जिसे हम धर्म का चिन्तन-पक्ष कहते हैं, उसका पटोत्थान मुख्यतः मगध, बंग, उत्कल में ही हो सका। ब्राह्मणों को लेकर आर्यों का जो दृष्टिकोण था, वह भी अतिरंजित / पूर्वाग्रहयुक्त था। यह भ्रम कि ब्राह्मण ही अध्ययन, मनन, चिन्तन का अधिकारी है, मगध / विदेह की धरा पर ही मिथ्या साबित हुआ और लड़खड़ा कर ध्वस्त हो गया। यहाँ यह सिद्ध हो सका कि क्षत्रिय भी अध्यात्म के प्रज्ञ वेत्ता हैं / हो सकते हैं, बल्कि इससे कहीं अधिक, जितने तत्कालीन ब्राह्मण थे। इन्द्रभूति आदि का महावीर के अनेकान्तात्मक प्रतिपादन के प्रति नतशीश होना इसी का ज्वलन्त प्रमाण है। इसीलिए वैदिक ब्राह्मणों का रुख इस क्षेत्र के निवासियों के प्रति शत्रुतापूर्ण था। ऋग्वेद में वर्णन है कि ऋषियों के प्रति द्वेष रखने वालों को अपना शत्रु समझो, जो वेद से भिन्न व्रत वाले हैं दण्डित हो, यज्ञ परायण को यज्ञहीनों का धन प्राप्त हो। (ऋग्वेद सूत्र.....)

ये प्राच्य भूमि के निवासी कौन थे इस विषय में— ऋग्वेद का अध्ययन करने पर एक विशेष जाति के विषय में पता चलता है। जो हिरण्य और मणि द्वारा शोभायमान थी। व्यवसाय में दक्ष, जो रूप और सन्तान पर गर्व करती है, जो धनी है, जो खाने-पीने में रूचिसम्पन्न है, जो धन की खोज में सामुद्रिक यात्रा करते हैं,

लेकिन वे इन्द्र को नहीं मानते, जो देवहीन थे, यज्ञोविहीन थे, जो देव निन्दक थे, जो ऋषियों को दान नहीं देते, जिनका दर्शन भी देवविहीन है। इस जाति को पणि के नाम से अलंकृत किया गया है। इन समृद्धशाली पणियों से ही सम्भवतः हमारी प्राचीन मुद्रा का नाम पण एवं वाणिज्य संसार का नाम पण्य हुआ। भारतवर्ष के प्राचीन युग में मुद्रा धातु के निर्माण के लिए आवश्यक ताम्र धातु सम्पदा इन पणियों के अधिकार में थी एवं भारतवर्ष की तत्कालीन अर्थ व्यवस्था में इनकी मुद्राओं का अत्यधिक महत्व था। साधारणतः धातु सम्पन्न लोग हमेशा ही कृषि पर आश्रित लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक समृद्ध एवं सम्पन्न होते हैं। ऋग्वेद में इन्हें सप्तसिन्धु के अंचलों के पार प्राच्य देश का निवासी बताया है और इनको वश में करने के लिये सुक्तियों की रचना की गयी है इससे यह स्पष्ट होता है कि ऋग्वेद की रचना के पूर्व में ही पूर्वी भारत में एक उन्नतिशील सभ्यता निवास करती थी जो यज्ञ और हिंसा विरोधी थी और प्राचीन निर्ग्रन्थ धर्म से अभिन्न थी।

(—ऋग्वेद ६।६१।१, १।३६।१६, १।३९।१०, १।१७६।४, १।१७५।३, १।३३।५, २।२६।१, ५।२०।२, २।२३।८, ६।६१।१)

चन्द्रगुप्त के समय यूनानी राजदूत मैगस्थनीज भारत आया था। वह चन्द्रगुप्त के दरबार में भी रहा उसने प्राच्य निवासियों के गुणों का वर्णन अपनी किताब इन्डिका में किया है— Megasthenes gives a vivid description of the qualities of the Prasii people, they may be sampled as follows :-

All the Indians are free and none of them is a slave. They do not even use aliens as slaves and much less a country man of their own.

They live frugally. They observe good order. Theft is a very rare occurrence. Their manners are simple. They have no suits about pledges or deposits. They confide in each other. Their houses and property they generally leave unguarded. They possess good, sober sense.

मैगस्थनीज के इन वर्णनों से यह स्पष्ट होता है कि प्राच्य निवासियों की सभ्यता बहुत ही सुसंस्कृत, सुसंगठित और उच्चकोटि की थी। शायद इसीलिए ईर्या के कारण ब्राह्मणों ने इन्हें अनार्य और असुर कहकर संबोधित किया है।

All the Prachyas were considered by the Brahmanas as Asuras, the non-Aryan Bharatiya people. It was very difficult to establish the Brahmanic Yagnic way of life in these Prachya Asura regions. The concept Prachya, in the age of Megasthenes referred to the whole of the eastern Bharata. These Prachyas were anti-Brahmanical people.

(Ancient India)

यहाँ ब्राह्मणों से तात्पर्य पतित ब्राह्मणों से है। ब्राह्मणों के स्वरूप के विषय में उत्तराध्ययन सूत्र के पच्चीसवें अध्याय में लिखा है कि “जिन्हें कुशल पुरुषों ने ब्राह्मण कहा है, जो स्वजनादि में आसक्त नहीं होता और प्रवृज्जित होने में सोचता नहीं है, जो राग, द्वेष और भय आदि से रहित है, जो त्रस और स्थावर प्राणियों को संक्षेप या विस्तार से जानकर त्रिकरण त्रियोग से हिंसा नहीं करता, जो क्रोध से, लोभ से, हास्य से और भय से झूठ नहीं बोलता, जो काम भोगों से अलिप्त है वहीं वास्तव में ब्राह्मण है।” आगे लिखा है कि—

न वि मुंडिण समणो, न ओंकारेण बंभणो ।

न मुणी रण्णवासेणं, कुसचीरेण न तावसो ।।३१

केवल सिर मुंडाने से कोई श्रमण नहीं होता, न ऊँकार बोलने से ब्राह्मण होता है, अरण्य में बसने मात्र से कोई मुनि नहीं हो जाता और न वल्कलादि पहिनने से कोई तापस हो सकता है ।

समयाए समणो होइ, बंभचरेण बंभणो ।

नाणेण उ मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ।।३२

समता से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तप से तपस्वी होता है ।

इस प्राच्य भू-भाग में मगध, विदेह, अंग, बंग और कलिंग आदि प्रमुख जनपद थे । यहाँ के निवासी वैदिक ब्राह्मणों से प्रथक वातरशना मुनि, अर्हत, ब्रात्य, निर्ग्रन्थ और श्रमण तीर्थकरों की परम्परा के उपासक थे । जहाँ तक हमारा इतिहास जाता है उससे पूर्व काल से इस प्राच्य भूमि में नाग, यक्ष, वज्जि, लिच्छवी, ज्ञात, मल्ल, मोर्य, आदि अनार्य जातियों की सभ्यता सम्पोषित और पल्लवित हुई थी । यहाँ की संस्कृति ज्ञान-विज्ञान, शिल्प, कला और कौशल आदि की दृष्टि से बहुत ही उच्चकोटि की थी । इस सांस्कृतिक परम्परा के प्रवर्तक और संवाहक तीर्थकर रहे थे ।

इस अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थकर हुए हैं इनमें प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव का निर्वाण अष्टापद पर और बाईसवें तीर्थकर श्री नेमीनाथ जी का निर्वाण इसी गुजरात भूमि के गिरनार पर्वत पर हुआ था । जबकि अन्य बाईस तीर्थकरों का निर्वाण प्राच्य भूमि के बिहार प्रान्त में हुआ था । कल्पसूत्र के अनुसार बारहवें तीर्थकर बासपूज्यजी का निर्वाण चम्पापुर (अंग जनपद) में हुआ था । अंतिम चौबीसवें तीर्थकर वर्द्धमान महावीर का पावापुरी में और शेष बीस तीर्थकरों का निर्वाण सम्मेत शिखर में हुआ जो मगध जनपद के हजारीबाग जिले में है । तेईसवें तीर्थकर पार्श्वनाथ के नाम से सम्मेत शिखर को पार्श्वनाथ पर्वत भी कहा जाता है । रविषेणाचार्य ने अपने पद्मपुराण में हनुमान जी का निर्वाण स्थान इसी पर्वत पर हुआ था उल्लेख किया है । वर्द्धमान कवि ने अपने दशभक्तयादि महाशास्त्र में रामचन्द्रजी का निर्वाण स्थान भी इसी पर्वत पर बतलाया है । बंगाल की सेंसस रिपोर्ट ४५७ पेज ११० में उल्लेख है कि प्राचीन काल में पारसनाथ हिल के समीप जैनियों की बहुत बड़ी बस्ती थी । भगवान महावीर के उपरांत काल में भी श्रमण-श्रमणियों का इस प्रदेश में सतत विहार (आवागमन) होते रहने से यह प्रदेश बिहार नाम से प्रसिद्ध हुआ । ई० पूर्व सातवीं शताब्दी में विहार में तीन प्रमुख जनपद थे ।

१. मगध जिसकी राजधानी राजगृही, २. विदेह जिसकी राजधानी वैशाली और ३. अंग जनपद जिसकी राजधानी चंपा थी ।

मगध : प्रज्ञापना सूत्र, सूत्रकृतांगसूत्र और स्थानांगसूत्र में मगध को आर्य जनपद कहा गया है । ऋग्वेद संसार की सबसे प्राचीनतम साहित्यिक रचना है । पूर्वी भारत के विषय में ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से नाम का उल्लेख नहीं मिलता लेकिन वहाँ मगध को कीकटों का देश लिखा है जहाँ पर गायें पर्याप्त दूध नहीं देती न उनका दूध सोमरस के साथ मिलता है । हे मागवन तू प्रमगन्ध के सोमलता वाले देश को भली-भाँति हमारे हुँकार से भर दो ।

किं ते कृण्वन्ति कीकटेपु गावो नाशिरं दुहे न तपन्ति घर्मम्।

आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन् रन्धया नः

—ऋग्वेद, ३।५३।१४

यास्क ने अपने निरुक्त ६।३२ में कीकट प्रदेश को अनार्यों का निवास स्थान बताया है (कीकटो नाम देशो अनार्य निवास)।

पुराणों के अनुसार जन्हू की पीढ़ी में कुश और उसका भाई अमूर्तया हुआ और अमूर्तया के पुत्र गय के नाम से गया नाम का राज्य हुआ जो आगे चलकर मगध कहलाया। इसके काफी समय बाद कुरु की पाँचवीं पीढ़ी में वसु नाम का प्रतापी राजा हुआ जिसने मगध से मत्स्य देश तक अपना राज्य स्थापित किया और उसको पाँच पुत्रों में बाट दिया। उसके एक पुत्र ब्रह्द्रथ मगध का राजा बना जिसके नाम से ही बार्हद्रथ वंश की नीव पड़ी। बार्हद्रथ वंश में ही जरासंध नामक प्रतापी राजा हुआ जिसका उल्लेख महाभारत में तो है ही जैन ग्रन्थों में भी हमें मिलता है। उसके समय गिरि ब्रज मगध की राजधानी थी। महाभारत के समय में श्री कृष्ण ने भीम और अर्जुन के साथ इसी गिरि ब्रज में प्रवेश किया था। कृष्ण ने अर्जुन को इस गिरिव्रज के वैभव के विषय में वर्णन करते हुए कहा कि— हे पार्थ! देखो, मगध राज्य का महानगर कैसा सुशोभित है। उत्तम-उत्तम अट्टालिकाओं से सुशोभित यह महानगरी सुजला निरुपद्रवा और गवादि से पूर्ण है। वैभार, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि तथा चैत्यक ये पाँचों शैल सम्मिलित होकर गिरिव्रज नगर की रक्षा कर रहे हैं। (महाभारत, सभा०)

जरासंध बड़ा प्रतापी राजा था उसने अंग, बंग, पुण्ड्र, करुस और चेरी देश को अपने प्रभावाधीन कर लिया था। आवश्यकचूर्णि में मगहसिरी गणिका का उल्लेख मिलता है जो जरासंध की गणिका थी। बार्हद्रथ वंश के बाद मगध में हर्यक वंश का शासन स्थापित हुआ जो नागवंश की ही एक शाखा थी। इसीवंश में श्रेणिक बिम्बसार, आजाद शत्रु और उदायी प्रमुख राजा हुए। छठीं शताब्दी ई० पूर्व में मगध उत्तर पूर्वी भारत का सर्वोच्च राज्य बन गया। और एक महत्वपूर्ण साम्राज्य के रूप में केवल भारतीय इतिहास में ही नहीं बल्कि निर्ग्रन्थ धर्म और वैचारिक क्रान्ति का महत्वपूर्ण केन्द्रीय स्थल भी बना।

मगध की राजधानी राजगृह के प्राचीन नाम ऋषभपुर क्षितिप्रतिष्ठ, चणकपुर, कुशाग्रपुर रहे थे। नवें तीर्थंकर सुविधिनाथ के चार कल्याणक च्यवन, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान जमुई मंडल के काकन्दी में हुआ। भगवती सूत्र के अनुसार काकन्दी में तेतीस समणोवासग (श्रमणोपासक) का उल्लेख मिलता है जिससे पता चलता है कि कभी यहाँ तेतीस श्रावक या जैन गृहस्थ निवास करते थे। चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर ने काकन्दी में विहार किया था। उनके कई शिष्य काकन्दी के निवासी थे। उन शिष्यों के नाम के साथ जनपद-बोधक नाम काकन्दक का उल्लेख मिलता है। काकन्दक का अर्थ है काकन्द के निवासी। जैन कल्पसूत्र की स्थविरावली में जैन श्रमणों के गण, शाखा और कुलों की एक सूची मिलती है। इससे ज्ञात होता है कि व्याघ्रापत्य गोत्र के सुप्रतिबुद्ध काकन्दक ने सुस्थित कौटिक के साथ कौटिकगण नामक जैन संघ की स्थापना की थी जिसकी चार शाखाएं थी। वसिष्ठ गोत्र के मुनि गुप्त काकन्दक ने मानव गण नामक एक दूसरे जैन संघ की स्थापना की थी। उसकी भी चार शाखाएं थी। भारद्वाज गोत्र के भद्रयशस् ने उडुवाटिक नामक गण की स्थापना की थी जिसकी चम्पिज्जिया (चम्पियिका) भद्रिज्जिया (भद्रियिका), काकन्दिया (काकन्दिका) और

मेहलिज्जिया (मेखलियाका) नामक चार शाखाएं थी। इन शाखाओं के नाम जनपदों के नाम पर दिये गये हैं।

—मुंगेर के जैन तीर्थ – रामरघुवीर।

दसवें तीर्थकर शीतलनाथ का जन्म हजारीबाग स्थित कलुहा पहाड़ी के पास हुआ। बीसवें तीर्थकर मुनि सुव्रतस्वामी का जन्म स्थान राजगृह था। भगवती सूत्र तथा उत्तराध्ययन सूत्र से यह पता चलता है कि मगध में तेइसवें तीर्थकर श्री पार्श्वनाथ का काफी प्रभाव था। भगवान महावीर के परिवारजन भी पार्श्वनाथ मत के अनुयायी थे। उनके पश्चात् महावीर के क्रियाकलापों का भी मुख्य केन्द्र मगध रहा। भगवान पार्श्वनाथ ने चातुर्याम धर्म का प्रतिपादन किया था। भगवान महावीर ने इसमें ब्रह्मचर्य को शामिल कर पंच महाव्रतों का प्रतिपादन किया था। साधना और तपस्या का यह प्रयोग इसी मगध की भूमि पर हुआ था। भगवान महावीर के उपदेश अर्द्धमागधी में हुए जो यहाँ की प्रमुख भाषा थी। ज्यादातर इतिहासविदों का मानना है कि महावीर का जन्म स्थान मगध के जमुइ के लछवाड़ में हुआ था। वहाँ के गाँव के नाम जन संघ डिही (जैन संघ) आचारज डीही (आचार्य) आदि इसकी पुष्टि करते हैं। लछवाड़ के पास महादेव सिमरिया में पाँच जिनमंदिर थे जिनकी मूर्तियाँ तालाब में डाल दी गयी और उन्हें शैव मंदिरों में परिवर्तित किया गया। लछवाड़ के मंदिर में जो प्रतिमा प्रतिष्ठित है वह गुप्तकाल से भी प्राचीन प्रतीत होती है। श्री अगरचंद नाहटा ने इसे पन्द्रह सौ वर्ष प्राचीन बताया है। उन्होंने लिखा है— चालीस वर्ष पूर्व जब हमने प्रथम बार क्षत्रिय कुंड की यात्रा की थी तो वहाँ की धर्मशाला में भगवान महावीर की माता त्रिशला की मूर्ति, जिनके गोद में भगवान महावीर बालक रूप में दिखाये गये थे, उस पर प्राचीन लिपि का लेख लिखा हुआ था, हमने देखी थी। खेद है कि वह मूर्ति सुरक्षित नहीं रही, पर उस पर खुदा हुआ लेख, जो हमने स्वयं देखा था, गुप्तकालीन लिपि का था। उन्होंने वर्तमान जन्मस्थान के मंदिर से दो मील दूर लोधापानी में जंगल-झाड़ी के बीच प्राचीन खंडहर भी देखे थे।

उत्तराध्ययन सूत्र में राजगृही में श्रेणिक राजा और अनाथि मुनि का एक आख्यान मिलता है जिससे यह परिलक्षित होता है कि राजा श्रेणिक निर्ग्रन्थ उपासक थे। यह आख्यान इस प्रकार है—

अनेक रत्नों का स्वामी और मगध देश का अधिपति श्रेणिक राजा मंडिकुक्षि नाम के उद्यान में विहार यात्रा के लिये गया।

वहाँ वृक्ष के नीचे एक साधु को बैठा हुआ देखा, वह संयमशील, समाधि युक्त सुकुमार और प्रसन्न चित्त था।

उस मुनि के अत्यन्त उत्कृष्ट रूप को देखकर राजा आश्चर्य में पड़ गया।

आश्चर्य है इसकी भव्य आकृति और सुन्दर रूप। इस आर्य पुरुष की क्षमा, निर्लोभता और भोगों से निस्पृहता आश्चर्यकारी है।

राजा उनको प्रदक्षिणा और चरणों में वन्दना करके न अति दूर और न अति निकट बैठकर हाथ जोड़कर पूछने लगा।

हे आर्य! आप तरुण अवस्था में ही प्रव्रजित हो गये हैं, भोग वेला में ही संयमी हो गये हैं। इसके कारण को मैं जानना चाहता हूँ।

महाराज ! मैं अनाथ हूँ, मेरा कोई नाथ नहीं है, न कोई मुझपर कृपा करने वाला मित्र ही है, यही कारण आप जाने।

यह सुनकर राजा हँसने लगा, उसे आश्चर्य हुआ कि इस प्रकार की ऋद्धि वाले के भी कोई नाथ नहीं है? हे संजती ! मैं तुम्हारा नाथ होता हूँ। आप भिन्न ज्ञाति युक्त होकर भोगों को भोगें। यह मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है।

हे मगधदेश के अधिपति श्रेणिक। तुम स्वयं ही अनाथ हो। स्वयं अनाथ होते हुए दूसरों के नाथ कैसे हो सकोगें।

साधु से, पहले कभी नहीं सुने ऐसे वचन सुनकर राजा विस्मित हुआ, व्याकुल हुआ, उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ।

हे मुनि। मेरे पास हाथी, घोड़े, मनुष्य नगर और अन्तपुर है मैं ऐश्वर्यशाली हूँ मेरी आज्ञा चलती है। मैं मनुष्य सम्बन्धी सभी भोग भोगता हूँ।

इस प्रकार प्रधान समृद्धि और सब प्रकार के काम भोग होते हुए मैं अनाथ कैसे हूँ? हे भगवन् आप झूठ नहीं बोले।

हे राजन तुम अनाथ शब्द के अर्थ और उसकी उत्पत्ति को नहीं जानते हो कि अनाथ और सनाथ किसे कहते हैं।

हे महाराज जिस प्रकार जीव अनाथ होता है और जिस आशय से मैंने कहा है, वह एकाग्र मन से सुनो।

प्राचीन नगरियों में श्रेष्ठ कोशाम्बी नाम की नगरी है वहाँ मेरे पिता प्रभूत धन संचय रहते हैं।

राजन प्रथम (यौवन) वय में मेरी आँखों में अत्यन्त वेदना हुई, और सारे शरीर में अति जलन होने लगी।

जिस प्रकार क्रोधित शत्रु शरीर के मर्म स्थानों में बहुत ही तीखे शस्त्र घुसेड़ दे, ऐसी वेदना मेरी आँखों में होती थी।

इन्द्र का वज्र लगने से जैसी वेदना होती है वैसी घोर और महा दुःखदायी वेदना मेरी कमर हृदय और मस्तक में हो रही थी।

मेरी चिकित्सा करने के लिये, विद्या, मन्त्र, मूल और शल्य चिकित्सा में कुशल एवं विशारद ऐसे आचार्य उपस्थित हुए थे।

मेरे हित के लिये वे वैद्याचार्य मेरी चतुष्पाद (वैद्य, औषधि, श्रद्धा और परिचारक) चिकित्सा करते थे किन्तु वे मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सके यही मेरी अनाथता है।

मेरे पिता मेरे लिये वैद्यों को सभी बहुमूल्य वस्तुएं दे रहे थे, किन्तु फिर भी मैं कष्टों से मुक्त नहीं हुआ, यही मेरी अनाथता है।

राजन पुत्र शोक से अति दुखी हुई मेरी माता ने अनेक उपाय किये किन्तु वह भी मुझे कष्टों से नहीं छुड़ा सकी, यही मेरी अनाथता है।

नरेन्द्र ! मेरे छोटे बड़े सगे भाइयों ने भी अनेक प्रयत्न किये, किन्तु वे भी मुझे कष्टों से मुक्त नहीं कर सके, यही मेरी अनाथता है।

नरेश ! मेरी छोटी बड़ी सगी बहने भी मुझे कष्टों से मुक्त नहीं कर सकी। यही मेरी अनाथता है।

महाराज मुझ पर अत्यन्त प्रेम रखने वाली और पतिव्रता मेरी पत्नी मेरे पास बैठकर अपनी आँखों के आँसुओं से मेरे हृदय को भिगोती थी। वह मेरे जानते या अजानते भी अन्न-पानी, स्नान सुगन्ध बिलेपन और माला आदि का सेवन नहीं करती थी तथा एक क्षण के लिये भी मुझसे दूर नहीं होती थी, किन्तु वह भी मुझे दुःख से नहीं छुड़ा सकी, यही मेरी अनाथता है।

तब मैंने सोचा कि इस अनन्त संसार में मैंने ऐसी दुस्सह वेदना बार-बार सहन की है, अब एक बार भी मैं इस महा वेदना से मुक्त हो जाऊँ तो क्षमावान, दमितेन्द्रिय और निरारंभी अनगार हो जाऊँ।

हे नरेन्द्र ऐसा विचार कर मैं सो गया। रात्रि बीतने के साथ मेरी वेदना भी नष्ट होती गई।

दूसरे दिन प्रातःकाल मैंने बन्धुजनों से पूछकर अनगार प्रव्रज्या धारण की।

अब मैं अपना, दूसरों का भी और सभी त्रस स्थावर प्राणियों का नाथ हो गया हूँ।

मेरी आत्मा ही वैतरणी नदी है और आत्मा ही कूटशाल्मली वृक्ष है, आत्मा ही कामधेनु है और यही नन्दन वन है।

आत्मा ही सुखों और दुःखों का कर्ता है और यही कर्म क्षय करने वाला है। श्रेष्ठ आचार वाली आत्मा मित्र और दुराचार वाली आत्मा शत्रु है।

यह सुनकर राजा ने कहा— हे महर्षि आपका मनुष्य जन्म सफल है। आपने ही इसका लाभ उठाया है। आप ही सनाथ और सबान्धव है। क्योंकि आप जिनेन्द्र के सर्वोत्तम मार्ग में स्थित है।

हे महाभाग आप अनाथों के नाथ है। हे संयति आप सभी प्राणियों के नाथ हैं। मैं आप से क्षमा चाहता हूँ और आपसे शिक्षा पाने का इच्छुक हूँ।

मैंने, आपसे पूछकर ध्यान में विघ्न किया और भोगों को निमन्त्रण दिया, इन सब अपराधों को क्षमा प्रदान करें।

इस प्रकार राजाओं में सिंह समान श्रेणिक उन अनगार सिंह की परम भक्ति से स्तुति करके अपने अन्तःपुर, परिजन और बान्धवों के साथ निर्मल चित्त से धर्म में अनुरक्त हुआ।

हर्ष से रोमांचित हुआ राजा प्रदक्षिणा करके और मस्तक झुकाकर वन्दना करके अपने स्थान को चला गया।

जैन साहित्य में उल्लेख है कि श्रेणिक राजा आने वाले उपसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर होंगे।

बौद्ध ग्रन्थ महावग्ग में लिखा है कि गौतम बुद्ध जब राजगृह में आये थे तब वह सुपार्श्व की बस्ती में ठहरे थे। मज्झिम निकाय में भी वर्णन है कि बुद्ध ने कहा था कि एक बार जब वह राजगृह में थे उन्होंने निर्ग्रन्थों को ऋषिगिरि पर्वत पर साधना करते हुए देखा था। मगध में नाग क्षत्रियों की बस्ती थी और गिरि व्रज के बीच में मणिनाग नामक स्थान था जिसे मणियार मठ के नाम से आज भी जाना जाता है। विद्वानों का मानना है कि बिम्बसार ने अपनी राजधानी गिरिव्रज से हटाकर समीप ही राजगृह को राजधानी बनाया और मगध की सीमा का विस्तार किया जिसमें बंग, कलिंग इत्यादि भी शामिल थे। उसकी एक रानी चेलना लिच्छवी जनपद के प्रमुख चेटक की बहन थी और भगवान महावीर की अनुयायी।

वर्द्धमान भगवान महावीर के समय श्रेणिक बिम्बसार मगध के सम्राट थे। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार राजा श्रेणिक के समय उसका साम्राज्य अनेक तत्त्व चिंतकों का केन्द्र था। बौद्ध ग्रन्थों में छः तत्त्व चिंतकों का वर्णन है जो सभी मगध के थे और इन सभी की साधना भूमि भी मगध थी। इनमें अजित केशकम्बलिन्, मक्खली गोसालक, पूर्ण काश्यप, प्रकुध कात्यायन, संजय वेलट्टि पुत्र और निगन्थ नाथपुत्र (महावीर) हैं। ये सभी संकलित वेदों के विरोधी थे। अजित केशकम्बलिन् की विचारधारा को पूर्णरूप से सामने रखने का हमारे पास साधन नहीं है। पर इतना स्पष्ट है कि वह वैदिक याग-यज्ञों के विरोधी थे। वह चार महाभूतों से सृष्टि की उत्पत्ति और मृत्यु के बाद उन्हीं में लय मानता था। परलोक और उसके लिये किये जाने वाले दान पुण्य को वह झूठा समझते थे। एक जन्म के पाप-पुण्य को दूसरे जन्म में भोगने और ब्रह्मज्ञानी होने का भी वह खण्डन करता था। मक्खली गोसालक आजीवक सम्प्रदाय का प्रमुख था। मगध से श्रावस्ती तक यह सम्प्रदाय फैला हुआ था। मक्खली बहुत गरीब माँ-बाप का बेटा था। गोशाला में पैदा होने के कारण उसको गोसालक कहते हैं। गोसालक बहुत महत्वाकांक्षी भी था। इसका मत था कि जीव चौरासी लाख योनियों में चक्कर खाते-खाते परम विशुद्ध दशा में आकर तपस्वी होता है और मोक्ष पाता है। इससे पहले कोई भी प्रयत्न करके मोक्ष नहीं पा सकता। यह जीवन का रास्ता इतना नपा तुला मानता था कि उसमें अच्छे और बुरे कर्मों से कोई भी अन्तर नहीं पड़ता था। शायद इसीलिए यह संयम पर भी विशेष जोर नहीं देता था। भगवती सूत्र के अनुसार गोसालक भगवान महावीर के साधना काल में उनका शिष्य रहा था। पूर्ण काश्यप वैदिक कर्मकाण्ड और औपनिषदिक ब्रह्मवाद का विरोधी था। वह न परलोक मानता था, न परलोक में भोगने वाला पाप-पुण्य। इस प्रकार वह स्वर्ग की कल्पना का भी विरोधी था। प्रकुध कात्यायन हर वस्तु को अचल और नित्य मानने वाला था। वह नियतिवाद का माननेवाला था। वह आत्मा की गति को इतना निश्चित मानता था कि उसमें अपने शुभाशुभ कर्मों द्वारा किसी प्रकार का रद्दो बदल सम्भव नहीं समझता था। संजय वेलट्टि पुत्र संशयवादी था। एक तरह से उसका दर्शन निराशावादी था। तीर्थंकर परम्परा में अंतिम २४वें तीर्थंकर निर्ग्रन्थ नाथपुत्र (वर्द्धमानमहावीर) पार्श्वनाथ के उत्तराधिकारी, उनके मत के संशोधक और जैन धर्म के बहुत बड़े व्याख्याता थे। वे अपने युग के बहुत बड़े आध्यात्मिक नेता थे। इनका पारिवारिक सम्बन्ध उस काल के मध्य देश के प्रायः सभी प्रमुख राज-घरानों से था। श्रेणिक बिम्बसार भी उनका रिश्तेदार था। बौद्ध साहित्यानुसार बुद्ध की साधना भूमि और सिद्धि-भूमि दोनों ही मगध रहे हैं।

मगध जनपद की आर्थिक समृद्धि का वर्णन पद्म चरित्र, कुवलयमाल, हरिवंश चरित्र, अभयकुमार चरित्र,

श्रेणिक चरित्र, चउप्पन महापुरिस चरिअ, वसुदेव हिंडी और त्रिशष्टिशलाकापुरुष आदि ग्रन्थों में मिलता है। ये जनपद व्यापार का केन्द्र स्थल था। यहाँ कस्तूरी, सुगन्धित द्रव्य, गज, अश्व, वस्त्र आदि का व्यापार होता था। कथा कोष में शालिभद्र की कथा में उस समय की भोजन व भोजन विधि का वर्णन विस्तृत रूप से मिलता है जब राजा श्रेणिक अपनी रानी चेलना के साथ सुभद्रा सेठानी के यहाँ जाते हैं। इसी प्रकार जम्बुस्वामी चरित् में भी पारंपरिक रीति-रिवाजों का उल्लेख है।

जैनों और बौद्धों के कारण ही मगध की राजधानी राजगृह तीर्थस्थान बन गयी थी। तीर्थकर महावीर ने विपुलाचल पर्वत पर निवास किया था और यहीं श्रेणिक बिम्बिसार को उपदेश दिया था। स्वर्णाचल (सोनगिरि), रत्नाचल, वैभार और उदयगिरि में भी जैन धर्म की प्राचीन कीर्तियों के अनेक निदर्शन भरे पड़े हैं। महावीर ने राजगृह में अनेक वर्षावास किये थे। राजगृह से कुछ हटकर नालन्दा नामक स्थान है। यहाँ भी महावीर ने दो वर्षावास किये थे। बुद्ध के भी यहाँ अनेक संस्मरण हैं। बाद में आगे चलकर इसी नालन्दा में जगत्प्रसिद्ध विश्वविद्यालय स्थापित हुआ। इस विश्वविद्यालय के खण्डहर मीलों तक पाये जाते हैं। नालन्दा के पास ही पावापुरी है, जहाँ महावीर का निर्वाण हुआ था यह जैनियों का तीर्थस्थान है। यहाँ एक विशाल और सुन्दर तालाब के बीच में एक सुन्दर मन्दिर है, जिसमें भगवान महावीर के चरण प्रतिष्ठित हैं।

फाहयान ने राजगृह का वर्णन करते हुए लिखा है कि— नगर से दक्षिण दिशा में चार मील चलने पर वह उपत्यका मिलती है जो पाँचों पर्वतों के बीच में स्थित है। यहाँ पर प्राचीनकाल में सम्राट बिम्बिसार का महल विद्यमान था। आज यह नगरी नष्ट-भ्रष्ट है।

मनियार मठ के पास एक पुराने कुएं में से कनिंगम को तीन मूर्तियाँ प्राप्त हुई थी। जिनमें एक भगवान पार्श्वनाथ की थी। काशीप्रसाद जायसवाल ने इस मूर्ति का लेख पढ़कर बताया कि यह लेख पहली शताब्दी का है और उसमें सम्राट श्रेणिक और विपुलाचल का उल्लेख है। इतिहासकारों के अनुसार वैभारगिरि पर्वत पर सातवीं शताब्दी तक जैन स्तूप विद्यमान था और गुप्तकाल की अनेको मूर्तियाँ थी। लेकिन आज जो जैन मंदिर वहाँ है उनके ऊपर का हिस्सा तो आधुनिक है किन्तु उनकी वेदी प्राचीन है। सोनभद्र गुहा का निर्माण मौर्य काल के राजाओं ने किया था। यहाँ प्रथम या द्वितीय शताब्दी का एक लेख है जिसमें उल्लेख है कि यहाँ पर वैरदेव ने जो गुफाएं निर्मित कराई थी जैन मुनियों के रहने के लिये और उनमें अर्हत की मूर्तियाँ स्थापित की थी। विपुलाचल रत्नगिरि उदयगिरि और स्वर्णगिरि पर जो प्रतिमाएं हैं वे कुछ गुप्तकालीन और कुछ उससे पूर्व की हैं। विविध तीर्थ कल्प में राजगृह में छत्तीस हजार घरों के होने का उल्लेख है।

गया से अणतीस किलोमीटर दूर हजारी बाग जिले में कुलुआ पहाड़ है यहाँ सैकड़ों जैन मंदिरों के भग्नावेश पड़े हुए हैं। यह तीर्थकर शीतलनाथ का जन्म स्थान है। डॉ० स्टाइन के अनुसार इस पर्वत के प्राचीन अवशेष जैन हैं। उन्होंने लिखा है कि गुफा के भीतर पार्श्वनाथ की भव्य मूर्ति सुव्यवस्थित ढंग से निर्मित है और उसके सिर पर सर्प फण है। इससे सटे हुए पश्चिम दिशा में एक छोटी गुफा में जिन मूर्ति स्थापित है जिसके नीचे सिंह प्रतीक के रूप में है।

आजात शत्रु के समय मगध की राजधानी राजगृही से चम्पा में स्थित हो गई। From the Uvasagadasao and the Antagadadasao we learn that there was a temple called Punnabhadda (which we

have dealt with in the following lines) at Campa in the time of Sudharman, one of the eleven disciples of Mahavira, who succeeded him as the head of the Jaina sect after his death. It is said that the town was visited by Sudharman, at the time of Kunika Ajatasatru who went there bare-footed to see the Ganadhara outside the city which was again visited by Sudharman's successors. ()

उत्तराध्ययन में वर्णन है कि चम्पा नगरी में पालित नामका वैश्य श्रावक रहता था जो भगवान महावीर का अनुयायी था। वह जहाज से व्यापार करता हुआ पिहूड नगर में गया। वहाँ विवाह के बाद अपनी स्त्री को लेकर वापस आते समय उसके पुत्र हुआ जिसका नाम समुद्र में जन्म होने के कारण उसका नाम समुद्रपाल रखा। युवावस्था प्राप्त होने पर एक बार भवन की खिड़की पर बैठे समुद्रपाल ने एक अपराधी को मृत्यु चिन्हों से युक्त वध स्थान पर ले जाते हुए देखा। उसे देखकर उन्हें बोध हुआ कि अशुभ कर्मों का अन्तिम फल पाप रूप यह दिखाई दे रहा है और वह माता पिता से पूछकर प्रव्रज्या लेकर मुनि बन गये और अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच महाव्रतों को स्वीकार कर इनका पालन करने लगे। अनेक परिषदों को जीतकर उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया और मोक्ष को प्राप्त हुए।

बारहवें तीर्थंकर वासपुज्य स्वामी के पंच कल्याणक भूमि चम्पापुरी में सुभद्रा सती ने तीन पाषाणमय कपाट को अपने शील द्वारा कच्चे सूत-तन्तु-वेष्टित चलनी से कुँ का जल निकालकर उससे सिंचित कर उद्घाटित किया था।

यहाँ के दधिवाहन राजा अपनी रानी पद्मावती के साथ उसका दोहद पूर्ण करने के लिए हाथी पर आरूढ़ होकर अरण्य-विहार करने गये। हाथी के न रुकने पर अरण्य में राजा वृक्ष की शाखा पकड़कर उतर गया। हाथी आगे चला गया और राजा अपने नगर में आ गया। देवी पद्मावती असमर्थता से उतर न सकी और उस पर चढ़ी हुई अरण्य में रह गई। हथिनी से उतर कर अरण्य में ही पुत्र-प्रसव किया, वह पुत्र करकण्डु नामक राजा बन प्रत्येक बुद्ध हुआ।

यहीं दधिवाहन राजा की पुत्री चन्दनवाला ने जन्म लिया, जिसने भगवान महावीर स्वामी को कौशाम्बी में सूप के कोणे में रहे हुए उड़द के बाकुले देकर पाँच दिन कम छः मासोपवास का पारणा द्रव्य क्षेत्र कालभाव अभिग्रह पूर्ण होने पर कराया।

यहाँ एवं पृष्ठचम्पा में प्रभु महावीर ने तीन वर्षाकाल विताए, उनके समवशरण हुए।

यहीं सुदर्शन सेठ पर उपसर्ग हुआ। यहीं विचरते हुए चौदह पूर्वधर श्री शय्यंभवसूरि ने अपने मनक नामक पुत्र को दीक्षित करके उसके अध्ययनार्थ दशवैकालिक सूत्र की रचना की।

यहीं के पूर्णभद्र चैत्य में भगवान महावीर ने कहा था कि जो अष्टापद पर आरोहण करता है वह उसी भव में मोक्षगामी होगा।

आजात शत्रु के पुत्र उदायी के समय मगध का केन्द्र स्थल चम्पा से पाटलीपुत्र में स्थित हो गया। कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य ने परिशिष्ट पर्व ६.३४ में लिखा है कि उदायी ने पाटलीपुत्र के केन्द्र में एक जिन

मंदिर का निर्माण किया। उदायी के बाद हर्यकवंश का अन्त हो गया और शिशुनाग वंश का प्रारम्भ हुआ। उसके बाद नंदवंश का राज्य स्थापित हुआ। नंदवंश के सम्राट नंदीवर्धन ने कलिंग देश को जीतकर वहाँ से जिन प्रतिमा को लाकर पाटलीपुत्र में प्रतिष्ठित की। इस वंश का अन्त मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त ने किया। लगभग इसी समय भगवान महावीर के छठवें पटधर भद्रबाहु स्वामी हुए। ऐसा माना जाता है कि सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य ने अपने अंतिम समय इन्हीं भद्रबाहु स्वामी से दीक्षा लेकर दक्षिण में चले गये। भद्रबाहु स्वामी के बाद उनके पटधर स्थूलीभद्र स्वामी हुए जिनके समय में जैन सूत्रों की प्रथम वाचना पाटलीपुत्र में हुई। पटना के लोहानीपुर से मौर्य कालीन निर्ग्रन्थ मूर्ति मिली है। यह भी कहा जाता है कि पाटलीपुत्र के गुलजार बाग में स्थूलीभद्र स्वामी का मंदिर था। It is quite in keeping with the tradition that there should be a temple of Sthulabhadra in the city which is located in Gulzarbagh ward. (Alltekar and Mishra Report Kum. Exca 1951-55 p. 10)

ऐसी मान्यता है कि स्थूलीभद्र स्वामी का निर्वाण उसी स्थान पर हुआ था। दूसरा महत्त्वपूर्ण स्थान पटना में आगमकुआं है। यूवानचंग ने इस कुएँ को अशोक का नरक कहा है जो गर्मजल का कड़ाह (हंडा) हुआ करता था। ऐसी मान्यता है कि पाटलिपुत्र के राजा के आदेशानुसार एक जैन श्रेष्ठी सुदर्शन भट्टी में कूद गया किन्तु वह सुरक्षित बच गये। जब राजा को उनकी आध्यात्मिक शक्ति के बारे में ज्ञान हुआ तो उसने उन्हें मुक्त कर दिया। सुदर्शन का निर्वाण मंदिर आगम कुएँ के बगल में है।

विविध तीर्थ कल्प में श्रीजिनप्रभ सूरिजी ने लिखा है कि तत्त्वार्थ सूत्र की रचना उमास्वाती ने यहीं पर की थी।

३२६ ई० पूर्व भारत में सिकन्दर के आक्रमण की चर्चा यूनानी इतिहासकारों ने विस्तृत रूप में की है। जिसके परिणाम बहुत ही दूरगामी हुए। भारतीय दृष्टिकोण से इसका महत्त्व इस बात में है कि उसने भारत और पश्चिमी देशों के बीच आवागमन का मार्ग खोल दिया, अन्यथा भारतीय इतिहास में उसके आक्रमण का कोई विशेष स्थान नहीं है। उसे महान् सैनिक सफलता भी नहीं कह सकते। जो कुछ भी सफलता उसके हाथ लगी वह छोटी-छोटी जातियों और राज्यों पर धीरे-धीरे प्राप्त विजय मात्र थी। भारतीय सैनिक शक्ति का दुर्ग समझे जानेवाले मगध साम्राज्य के निकट बढ़ने का साहस वह न कर सका। उसे झेलम और चेनाव के नीचे के छोटे से प्रदेश के शासक पोरस के विरुद्ध जिस प्रकार लोहा लेना पड़ा और उसके लिए जो प्रयत्न करने पड़े, उसको देखते हुए इस बात की सम्भावना नहीं जान पड़ती कि शक्तिशाली नन्द साम्राज्य को पराजित करना उसके लिए सरल होता। इन सभी बातों को देखते हुए यवन सभ्यता की चकाचौंध से चकित न होनेवाला कोई भी आधुनिक इतिहासकार इस बात के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता यदि वह यह समझे कि यवन लेखकों में से अधिकांश ने जो सिकन्दर की वापसी का कारण उसके-सैनिकों के आगे बढ़ने की अनिच्छा को ही माना है वह एकमात्र कारण न था और न वह उन प्राचीन यवन लेखकों के इस कथन की ही मनगढ़न्त कहकर उपेक्षा कर सकता है कि सिकन्दर के लौटने का कारण नन्दों की अपरिमित शक्ति का आतंक था। इस समय तक पूर्वी राज्यों की शक्ति और गौरव का प्रभाव पूरे भारत में स्थापित हो चुका था। (हीरालाल दूगड़)

The Prasii surpass in powers and glory every other people in the whole of India and their capital being Palibothra is a very large and wealthy city, after which some call the people itself the Palibothra, may, even the whole tract along the Ganges. Their king

has in his pay a standing army of 600,000 foot-soldiers, 30,000 cavalry and 9,000 elephants: (Ancient India)

चंद्रगुप्त : यवनों की पराधीनता से देश को मुक्त करने का श्रेय एक स्वर से हम चंद्रगुप्त मौर्य को दे सकते हैं। इस वीर का आरम्भिक जीवन प्रायः पूर्णतः अज्ञात है, परन्तु उसने अपने परवर्ती जीवन में जो महान् सफलताएँ प्राप्त की, उसके कारण उसकी स्मृति असंख्य दंतकथाओं में सुरक्षित है। बाद के ब्राह्मण-ग्रन्थों में जो संकलित वेदों से प्रभावित ब्राह्मणों के मस्तिष्क की उपज लगते हैं। उसे मगध के नन्द शासक की एक नीचकुलोत्पन्न मुरा नामक स्त्री से उत्पन्न कहा गया है और यह माना गया है कि उस मुरा के नाम पर ही वंश का नाम मौर्य पड़ा। तिथि की दृष्टि से इससे पूर्व के बौद्ध इतिवृत्तों में उसे क्षत्रिय माना गया है। महापरिनिब्बान सुत्त में उल्लेख है कि चन्द्रगुप्त पिप्पलीवन के मोरिय नामक क्षत्रिय-कुल में जन्मा था। तथा चंद्रगुप्त मौर्य मोरिय गणतंत्र का रहने वाला था और यह गणतंत्र गोरखपुर जिले में पड़ता है महावीर के गणधरों में एक मौर्य पुत्र भी थे। मोरिय जाति में विद्या और वीरता दोनों ही विद्यमान थे। चन्द्रगुप्त का कर्म क्षेत्र ब्राह्मण भूमि मगध था जहाँ उसने एक बड़ा साम्राज्य स्थापित किया।

चंद्रगुप्त की सैनिक शक्ति भारतीय प्रायद्वीप के दक्षिण छोर तक फैल चुकी थी। इस प्रकार प्राच्यभूमि में प्रथम इतिहासिक साम्राज्य की स्थापना चंद्रगुप्त मौर्य द्वारा हुई।

Chandragupta Maurya was a powerful and glorious monarch of the Prachya people. This Prachya kingdom did not extend only upto the Indus river but much beyond, upto the Kaukasos region in the north and Arachosia and parts of Gedrosia in the far west. He had a very large military force, and vast financial resources. Chandragupta's rise to greatness is indeed a romance of history. ----

महान पराक्रमी चन्द्रगुप्त, जिसके जीवन का प्रारम्भ एक सैनिक से हुआ और जिसने एक बहुत बड़े साम्राज्य को धराशायी किया तथा जिसने स्वयं एक बहुत बड़े साम्राज्य का निर्माण किया; जिसका वाह्य जीवन बहुत ही व्यस्त और सख्त था; पर उसका अन्तर कुछ और था। जीवन के अन्तिम प्रहर में वह अन्तर्मुख हो गया। जिसने तलवार से भारतवर्ष की सीमा खींची थी, जो खून की नदी में तैरता था, जिसने जीवन में सभी सुख-ऐश्वर्य का भोग किया, कहा जाता है कि उसके राज्यकाल में मगध में घोर अकाल पड़ा— इसके बाद वह मैसूर की ओर चला गया, जहाँ उन्होंने सल्लेखना द्वारा शरीर का त्याग किया। चन्द्रगुप्त के विषय में Ancient India में लिखा है—

Chandragupta in his last days, renounced the world and followed the Jaina migration led by Bhadrabahu to a place in Mysore known as Shravana Belgola, where some local inscriptions still perpetuate memory of Chandragupta and Bhadrabahu living together as saints. The hill where he lived is still known as Chandragiri, and a temple erected by him as Chandraguptabasti. Chandragupta, in the true Jaina fashion, fasted unto death (Samlekhana Samthara) in this place. As he belonged to the Shramanic way, the chroniclers of the Brahmanic way gave him a degraded descent. He was called base-born, a Shudra, an outcaste and of low birth. He is said to have blood relationship with

the Nandas who are said to have low and immoral origin. The Brahmana puranas and other literature speak despisingly of (the Nandas and) Chandragupta. Why ? answer is that he was a Prachya hero.

ब्राह्मणों द्वारा चन्द्रगुप्त को नीची जाति का बताने के पीछे जो कारण था वह उसका जैन होना, प्राच्य देश का सम्राट होना था।

Chandragupta is called a Prachya because he was the ruler of the Prachya territory and the non-Aryan Asura Prachya people. Chandragupta, the Prachya, was a great Jaina hero following the Shramanic way of life.

गांगणिका में चन्द्रगुप्त द्वारा निर्मित मूर्ति का उल्लेख हमें मिलता है। राजस्थान में गांगणिका नाम का गाँव जोधपुर से अठारह किलोमीटर पर है वहाँ अत्यन्त प्राचीन पार्श्वनाथ का मंदिर है जो मौर्य कालीन है। ई० सन् १६६२ ई० में वहाँ तालाब के पास भूगर्भ में कई मूर्तियाँ मिली थी। उस समय कवि समयसुन्दर गणिका यात्रार्थ गांगणिका गये थे तथा उन्होंने उन मूर्तियों का दर्शन व निरीक्षण किया तथा उनका वर्णन एक स्तवन में लिखा है-

**प्रतिमा श्वेत सोनातणी, मोटो अचरज ये होजी।
चन्द्रगुप्त राजा भये, चाणक्य दिरायों राजोजी।
तिण यह बिंब भरबियो, साध्या आत्म काजो जी।।**

इसके अलावा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में लिखा है कि सम्राट ने देवस्थानों के लिये आज्ञा दी थी कि जो कोई देव मंदिर का अनादर करेगा वह दण्ड का भागी होगी। (आक्रोशाद्देव चैत्याना मुत्तमं दंड मर्हति)

चन्द्रगिरि पर्वत पर चन्द्रगुप्त के पुत्र बिन्दुसार द्वारा पिता की स्मृति में बनाया गया मंदिर है ऐसा भारतीय सरकार के पुरातत्वविदों द्वारा उल्लेख किया गया है।

अशोक : अशोक के शासनकाल की जिस पहली घटना की प्रामाणिक जानकारी हमें है वह राज्याभिषेक के नौ वर्ष बाद होनेवाली कलिंग विजय है। सुवर्णरेखा और गोदावरी नदियों के बीच भारत के पूर्वी तट की लम्बी पट्टी को प्रायः कलिंग कहा जाता है। यद्यपि उसकी अशोककालीन निश्चित सीमा नहीं बतायी जा सकती, तथापि निस्संदेह ही वह एक जन बहुल और शक्तिशाली राज्य था। अशोक के तेरहवें शिलालेख में एक भीषण युद्ध के पश्चात् कलिंग की विजय का विस्तृत वर्णन किया गया है। इस युद्ध में डेढ़ लाख आदमी पकड़े गये। एक लाख मारे गये थे। उस समय कलिंग का राजा क्षेमराज था जो वैशाली के गण प्रमुख चेटक का वंशज था और जैन धर्मी था। सम्भवतः अशोक ने स्वयं इस युद्ध का संचालन किया था तथा उसकी विभीषिका और उनके परिणामस्वरूप कष्ट और रक्तपात से उसका हृदय विचलित हो उठा। उसके कारण उसके हृदय में जो भावनाएं उठी उनका उसने अपने शिलालेख में उसने इस प्रकार वर्णन किया है।

इस प्रकार कलिंग जीतनेवाले देवानांप्रिय को बड़ा खेद है, क्योंकि किसी अविजित देश की विजय में वध, मरण और लोगों का बंदीकरण होता है। यह देवानांप्रिय को अत्यन्त दुःखद और खेदजनक जान पड़ता है। देवानांप्रिय इससे भी अधिक यह इसलिए खेदजनक समझता है कि वहाँ ब्राह्मण, श्रमण तथा दूसरे धर्म वाले और गृहस्थ रहते हैं। ऐसे देश में ऐसे लोगों की हत्या, हिंसा और उनका प्रियजनों से वियोग होता है, अथवा मित्रों, परिचितों, सहायकों और कुटुम्बियों को जो स्वयं तो सुरक्षित हैं और जिनका स्नेह अबाध है, कष्ट होता

है। इस प्रकार उनका भी एक प्रकार से उपघात होता है।

अशोक ने दूर के देशों में धर्म प्रचार के लिए धर्म प्रचारकों का दल भेजा था। उसके धर्म प्रचारकों ने भारत के विभिन्न भागों और लंका का ही भ्रमण नहीं किया, वरन् वे पश्चिमी एशिया, मिस्र और पूर्वी यूरोप भी गये। सिर्फ उसके समय मगध में अहिंसा का संदेश जिन विदेशी राज्यों में पहुँचा उनमें से इन पाँच का उल्लेख अशोक के लेखों में मिलता है—सीरिया और पश्चिमी एशिया का राजा अन्तियोक थियोस, मिस्र का राजा तुरमय द्वितीय (फिलोडेलफस), मकदूनिया का राजा अन्तिकिन, साइरीन का राजा मग और एपिरस का राजा सिकन्दर।

धर्म के मूल तत्त्वों को बताकर जनता के चरित्र को उठाना उसका प्रधान लक्ष्य और चिन्ता थी। इसलिए उसने चट्टानों पर लेखों को अंकित कराया जो लगभग २३०० वर्ष बीत जाने पर भी उसके जीवन की पवित्रता और विचारों की उच्चता के अमरस्मारक हैं। धर्म के जिस स्वरूप पर उसने जोर दिया, वह किसी धार्मिक सिद्धान्त की अपेक्षा सदाचार के नियमों का एक संग्रह है। उसने न तो कभी तत्त्व-विज्ञान की चर्चा की और न ईश्वर और आत्मा का उल्लेख किया। उसने केवल जनता से अपनी वासनाओं को नियन्त्रित करने, अपने आंतरिक विचारों में जीवन और आचरण को पवित्र बनाने, अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु होने, जानवरों को न सताने और न मारने, उनकी चिन्ता रखने, सबके प्रति उदार होने, माता, पिता, गुरु, सम्बन्धियों, मित्रों और साधुओं के प्रति उचित सम्मान प्रकट करने, नौकरों और दासों के प्रति उदारता तथा दया का भाव रखने और सर्वोपरि सत्य बोलने को कहा। ये ही श्रमण संस्कृति के आधारभूत तत्त्व हैं जो इसी प्राच्य भूमि से दुनिया के दूसरे देशों में फैले।

सम्राट ने इन सत्त्यों का न केवल प्रचार किया वरन् स्वयं भी उन पर आचरण किया। उसने आखेट और माँस-भक्षण आदि त्याग दिया। उसने मनुष्य और पशुओं के लिए न केवल अपने साम्राज्य में वरन् पड़ोसी राज्यों में भी अस्पताल स्थापित किए। उसने ब्राह्मणों और अन्य धर्मावलंबियों को मुक्त-हस्त दान दिया। उसके लेखों से यह भी ज्ञात होता है कि उसने मनुष्यों और पशुओं के उपयोग के लिए सड़कों के किनारे पांथशालाएं बनवाई, कुएं खुदवाये और पेड़ लगवाये। पशु-वध रोकने के लिए उसने अनेक नियम जारी किये।

अशोक की माता धर्मा के गुरु आजीवक सम्रदाय के थे। गया के पास बराबर की पहाड़ी में गुफाओं की श्रृंखला है जिन्हें अशोक और दशरथ ने आजीवक संघ को दान की थी। “Other Jain relics of Mauryan Bihar are a number of caves in the Barabar and Nagarjun Hills, dedicated by Ashoka and Dasaratha to the Ajivika sect. (लेख.....)

उत्तराध्ययन सूत्र के दसवें अध्ययन में भगवान महावीर स्वामी ने गौतम स्वामी को पल भर भी प्रमाद न करके धर्म का आचरण करने का उपदेश दिया है।

धम्मं पि हुसद्धहंतया, दुल्लहया काएण फासया।

इह कामगुणेहिं मुच्छिया, समयं गोयम मा पमायए।।२०

धर्म पर श्रद्धा होने पर भी उनका काया से आचरण करना अत्यन्त दुर्लभ है, इसीलिए हे गौतम क्षणभर भी प्रमाद मत करो। इसी की अभिव्यक्ति हमें अशोक के शिलालेख के इस उल्लेख से होती है जिसमें लिखा है कि— बहुत दिनों से हर घड़ी काम करने और समाचार प्राप्त करने की प्रथा नहीं रही, अतः अब मैं यह

व्यवस्था करता हूँ कि सब समय और सब जगह चाहे मैं भोजन करता रहूँ, चाहे अन्तःपुर में रहूँ, अथवा शयनागार में, अथवा गोपनागार में, या अपने यान में अथवा राजोद्यान में, लोक-कार्य की सूचना प्रतिवेदकों द्वारा मुझे दी जाय। मैं प्रजा का कार्य हर जगह करने को प्रस्तुत हूँ..... मैंने आदेश दे रखा है कि प्रत्येक समय और प्रत्येक स्थान में मुझे तुरन्त सूचना मिलनी चाहिए क्योंकि अपने कार्यों और प्रयत्नों से मुझे कभी पूर्ण सन्तोष नहीं होता, क्योंकि जनता के हित के लिए ही मुझे सतत प्रयत्न करना चाहिए और उसका मूल कार्यों के संचालन और प्रयत्न में है। जो कुछ मैं प्रयत्न करता हूँ उसका उद्देश्य यही है कि मैं प्राणि-मात्र के प्रति अपने ऋण से उन्नत हो सकूँ और मैं उन्हें यहाँ प्रसन्न रख सकूँ तथा परलोक में वे स्वर्ग प्राप्त कर सकें।

अशोक की अहिंसा मनुष्यों तक सीमित नहीं थी बल्कि उसकी परिधि में क्षुद्र, मूक पशु-पक्षी भी आ गये थे। कुछ पर्वों के दिनों अष्टमी, चतुर्दशी आदि के दिनों में जानवरों को दागने बघिया करने पर भी प्रतिबन्ध था। जनता की धार्मिक परम्पराओं को और भी सुदृढ़ करने के लिये उसने तरह-तरह के दृश्यों के प्रदर्शन के आयोजन किये जैसे हाथी, अग्नि ज्वाला और दीपमालिका आदि के जुलूस निकाले। इन जुलूसों में देव प्रतिमाओं का प्रदर्शन होता था। यह विचारणीय है कि ये प्रतिमाएं किनकी थी क्योंकि बौद्धों की मूर्तियाँ सर्वप्रथम कुषाण काल में बनी थी। अतः निश्चित तौर पर ये जिन तीर्थकरों की मूर्तियाँ होनी चाहिये। क्योंकि इस प्रकार की परम्परा आज भी जैनियों में प्रचलित है।

अशोक ने अपनी प्रजा पर किसी भी धर्म को थोपने की कोशिश नहीं की। सभी धर्मों को राजकीय आश्रय दिया। उसके द्वारा नियुक्त धर्म महामात्य राज्य के धन से ब्राह्मणों, आजीविकों, निग्रन्थो सभी का हित चिंतन करते थे। चट्टान लेख १२ में लिखा है **सभी सम्प्रदायों के सार की वृद्धि हो**। स्तम्भ लेख छः में उसने लिखवाया है- मैं सभी समाजों को ध्यान में रखता हूँ क्योंकि मैंने सभी सम्प्रदायों के अनुयायियों की विविध प्रकार से पूजा की किन्तु अपने आप स्वयं इन सबके पास जाना मैं मुख्य कार्य समझता हूँ।

हम कह सकते हैं कि अशोक के लेखों में जिस धर्म के तत्व है वह कोई धर्म विशेष नहीं है वह एक आचरण संहिता है जिसमें सभी धर्मों का सार है।

डॉ० राधाकुमुद मुखर्जी ने लिखा है कि अशोक ने आसवों के संबंध में बौद्धों के स्थान पर जैनों का मत माना है। डॉ० भंडारकर (अशोक, पृ० १२९-३०) के मतानुसार अशोक के अन्य लेखों पर भी जैन प्रभाव दिखाई पड़ता है। उसके लेखों में जीव, प्राण, भूत और जात शब्द आचारांग सूत्र के पाणा-भूया-जीवा-सत्ता के ही पर्याय है। इस प्रकार अशोक ने अपने उस वचन का पालन ही किया है जिसमें उसने यह कहा है कि उसने अपने धर्म में ब्राह्मण, बौद्ध और जैन—सभी धर्मों का सार ग्रहण किया है।

जैन और बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार अशोक के बाद उसका पोता सम्प्रति राजगद्दी पर आसीन हुआ। विविध तीर्थकल्प में लिखा है कि मौर्य वंशी चन्द्रगुप्त के वंश में बिन्दुसार, अशोक श्री, कुणाल और उसका पुत्र त्रिखंड भर्ताधिप परमाहित, अनार्य देशों में भी श्रमण विहार प्रवर्तन करने वाला महाराज सम्प्रति हुआ।

तद्वंशे तु बिन्दुसारोऽशोकश्रीकुणालसूनुस्त्रिखण्ड भरताधिपः परमार्हतो अनार्यदेशेष्वपि प्रवर्तितश्रमणविहारः सम्प्रतिमहाराजश्चाभवत्।
—विविधतीर्थकल्पे पाटलीपुत्रनगरकल्पः पृ० ६९।

सम्राट सम्प्रति ने आचार्य सुहस्ति स्वामी से जैन धर्म स्वीकार किया और जैन धर्म का देश और विदेश में प्रचार किया। कई इतिहासविदों का यह मानना है कि जिन शिलालेखों पर देवानाम प्रियदर्शन लिखा है वे सब सम्प्रति के शिलालेख हैं और जिनपर सिर्फ देवानाम प्रिय या देवानाम प्रिय अशोकस्स लिखा है वे अशोक

के है क्योंकि इन शिलालेखों में जैन तत्त्व दर्शन तथा जैन पारिभाषित शब्दों का प्रयोग इतना अधिक है कि इन्हें बौद्ध नहीं माना जा सकता है। सम्प्रति के शिलालेखों में स्थावर जीवों का वर्णन, समाचरण और संयम, अष्टमी, चतुर्दशी और पर्युषण पर्व की पुण्य तिथियों में पक्षियों के वध, शिकार का निषेध, संयम, भावशुद्धि और आश्रव का उल्लेख, स्वामी वात्सल्य का प्रयोग जो आज भी जैन परम्परा में दिखाई देता है, स्तम्भ के ऊपर सिंह की मूर्तियां एवं चक्र ये सब इस बाद की पुष्टि करते हैं कि जिन्हें हम अशोक के शिलालेख मानते हैं उनमें से अधिकांश सम्प्रति के है। An epitome of Jainism में लिखा है कि Samprati was a great Jain monarch and a staunch supporter of the faith. He erected thousands of temples throughout the length and breadth of its vast empire and consecrated large number of images. He is stated further to have sent Jain missionaries and ascetics abroad to preach Jainism in the distant countries and spread the faith amongst the people there.

-- An Epitome of Jainism, Appendix A. p. v

सम्प्रति के बनाये हुए मंदिरों के अवशेष गिरनार में तथा कुम्भलगढ़ के किले में आज भी दृष्टिगोचर है। 'कुम्भलगढ़ अजेयदुर्ग' पुस्तक में लेखक डॉ० गौरीशंकर अशावा ने लिखा है कि इस दुर्ग को सबसे प्रथम सम्प्रति ने निर्मित कराया था। आज भी वहाँ अनेकों जैन मंदिर हैं। वहाँ मामादेव मंदिर की खुदाई के दौरान २६८ छोटी-बड़ी सफेद व काले पत्थर की जैन मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। कहा जाता है कि महाराणा कुम्भा के समय में वहाँ ७०० जैन मंदिर थे तथा संध्या की पूजा के समय ७०० घंटियाँ बजते हुए मनुष्य मात्र को अपने जीवन के परम लक्ष्य का ध्यान दिलाती थी। कर्नल टॉड ने लिखा है कि कमलमेर का शेष शिखर समुद्रतल से ३३५३ फीट ऊँचा है। वहाँ ऐसे कितने ही दृश्य विद्यमान हैं, जिनका समय अंकित करने में लगभग एक मास का समय लगने की सम्भावना है। किन्तु हमने केवल उक्त दुर्ग और एक बहुत पुराने जैन मन्दिर का चित्रांक समाप्त करने का समय पाया था। इस मंदिर की गठन प्रणाली बहुत प्राचीन काल के समान है। कर्नल टॉड ने यह मंदिर राजा सम्प्रति का बनाया हुआ लिखा है।

संक्षेप में मगधदेश का जैनधर्म और जैनसंस्कृति के साथ अत्यन्त प्राचीन काल से ही अटूट घनिष्ठ संबंध है। मगध का अस्तित्व और उसका इतिहास, उसकी संस्कृति, श्रमणपरंपरा, अर्द्धमागधी प्राकृतआगम, साहित्यपंचागी, जैनधर्म के स्थापत्य और इतिहास के अभिन्न अंग हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि मगध ने यदि जैनधर्म को पोषण दिया है और उसका वर्तमान इतिहास दिया है तो जैनधर्म ने भी मगध को सर्वतोमुखी उत्कर्ष साधन दिया है और उसे विश्वविश्रुत बना दिया है। (श्री हीरालालजी दूगड़)

वैशाली गणतंत्र :

अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री विल किंलटन ने अपनी भारत यात्रा के समय भारतीय संसद को संबोधित करते हुए कहा था India has been teaching a very importance lesson to us, that is democracy आज से २६०० वर्ष पूर्व पूर्वी भारत की धरा पर जिस गणतंत्र का वर्णन हमें प्राचीन साहित्य में मिलता है। वह था वैशाली गणतंत्र। वह कौन सा दर्शन था, वह कौन सी विचारधारा थी, वह कौन से सिद्धान्त थे जिनका प्रभाव इस प्राचीन प्रमुख गणतंत्र की समृद्धि, विकास और पराक्रम का कारण बनी। यह विचारणीय है। अन्य देशों में गणतंत्र जब अपने शैशव अवस्था में था उस समय पूर्वी भारत की धरा पर वह पूर्णरूप से विकसित हो चुका था। और आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से बहुत ही समृद्ध था। तीर्थकरों के उपदेशों का अनुकरण, समानता और सहअस्तित्व के सिद्धान्तों का प्रयोग इनकी वैशिष्ट्यता को परिलक्षित करता है। स्वर्गीय रामधारी सिंह दिनकर जी ने इस वैशाली गणतंत्र के प्रति अपनी श्रद्धांजलि व्यक्त करते हुए लिखा है—

वैशालीजन का प्रतिपालक, गण का आदि विधाता, जिसे ढूँढ़ता देश आज, उस प्रजातंत्र की माता।

रुको ! एक क्षण पथिक, यहां मिट्टी को सीस नवाओ, राज-सिद्धियों की सम्पत्ति पर, फूल चढ़ाते जाओ।।

रामायण और विष्णुपुराण के अनुसार वैशालीनगरी की स्थापना इक्ष्वाकु-पुत्र विशाल द्वारा की गई थी। इसी लिये यह विशाला नाम से प्रसिद्ध हुई। यह विदेह जनपद की राजधानी थी। इसके विषय में विविध तीर्थ कल्प में लिखा है— “वहाँ ऋद्धि से समृद्ध मिथिला नामक नगरी थी जो वर्तमान में जगई नाम से प्रसिद्ध है। इसके निकट ही जनक महाराजा के भ्राता कनक का निवासस्थान कनकपुर है।

यहाँ जुगबाहु-मयणरेहा के पुत्र नमी नामक महाराजा वलय—चूड़ियों के शब्द से प्रत्येकबुद्ध हुए और सौधर्मेन्द्र परीक्षित वैराग्य निश्चय वाले हुए।

यहाँ चरम तीर्थकर श्री महावीर भगवान ने वर्षाकाल बिताया था। जहाँ मल्लिनाथ चैत्य में वैरुट्या देवी, कुबेर यक्ष एवं नेमिनाथ चैत्य में गंधारी देवी और भुकुटि यक्ष की मूर्तियाँ हैं।

वैशाली धन धान्य से समृद्ध तथा जन-संकुल नगरी थी। बौद्ध और जैन दोनों धर्मों के इतिहास से वैशाली के इतिहास से घनिष्ठ संबंध रहा है। पांच सौ वर्ष ईसा पूर्व में भगवान महावीर और गौतम बुद्ध इन दोनों की पवित्र स्मृतियाँ वैशाली में निहित हैं।”

बौद्ध साहित्य में वैशाली और उसपर आधिपत्य रखने वाली लिच्छिवी जाति का बहुत कुछ वर्णन मिलता है किन्तु इस जनपद और समाज पर सर्वोपरि अधिकार रखने वाले किसी खास व्यक्ति का नाम नहीं मिलता। यह नगरी वज्जि (वृज्जि) संघ गणतंत्र की राजधानी वैशाली थी। श्रीमती राईस डेविड के अनुसार गौतम बुद्ध के प्रारम्भिक दो उपदेशक अलारा और उदक वैशाली के थे जिनसे शिक्षा प्राप्त कर उन्होंने अपना धार्मिक जीवन प्रारम्भ किया था। जैनग्रन्थों के अनुसार वैशाली के प्रमुख १८ गणतंत्र के राजाओं द्वारा निर्वाचित महाराजा चेटक थे। वह भगवान महावीर के मामा थे और तेईसवें तीर्थकर भगवान पार्श्वनाथ की परंपरा के अनुयायी।

तीर्थकर भगवान महावीर के वंश के साथ चेटक का संबंध : तीर्थकर महावीर की माता रानी त्रिशला चेटक

की बहन थी। सबसे प्राचीन जैनागम आवश्यक चूर्ण से इसका उल्लेख मिलता है। विशाला (त्रिशला) के बड़े पुत्र (महावीर के बड़े भाई) नन्दीवर्धन की पत्नी ज्येष्ठा चेटक की पुत्री थी। जैनागमों में सबसे प्राचीन एवं प्रथम आचारांग सूत्र में भगवान महावीर की कुछ जीवनी मिलती है। उसमें एक स्थान पर महावीर की माता का एक नाम **विदेहदित्रा** भी आया है। अर्थात् महावीर की माता के तीन नाम— **त्रिशला, विदेह-दित्र और प्रियकारिणी** थे। भगवान का भी एक नाम **विदेहदित्र** है। अर्थात्—विदेहदित्रा त्रिशला का पुत्र-विदेह दित्रा- वर्धमान महावीर थे। इस प्रकार त्रिशला विदेह की कन्या महाराजा चेटक की बहन थी। कुंडपुर के राजा सिद्धार्थ चेटक के बहनोई थे। नन्दीवर्धन एवं वर्धमान महावीर त्रिशला और सिद्धार्थ के पुत्र थे और महाराजा चेटक के भानेज थे। नन्दीवर्धन को चेटक की बेटी ज्येष्ठा व्याही थी। अतः नन्दीवर्धन महाराजा चेटक के जवाई (दामाद) भी थे।

भगवान महावीर ने अपने केवली जीवन के बारह चतुर्मास वैशाली में और छः चातुर्मास मिथिला में व्यतीत किये थे।

“Besides the Videhans, the Licchavis along with the Jnatrikas must have come directly under the influence of the teaching of Mahavira. The cases of Trisala, Siddhartha, Cetaka, Cellana and others, suggest that the Licchavis had a distinct sympathy and respect for the Jainas. Furthermore, Cellana, one of the seven daughters of king Cetaka, was married to Bimbisara, with the result that both of them became ardent Jainas. And, the other six daughters of Cetaka married to different kings are also said to have been strong supporters and followers of Jainism.”

“आज से लगभग छब्बीस सौ वर्ष पहले वैशालीनगर सभी प्रकार की सुविधाओं से सम्पन्न था जो नौ मील की परिधि में बसा हुआ था। सुन्दर चैत्यों, तालों तथा बाग-बगीचों से परिपूर्ण था। नगर की बहुत ही सुव्यवस्थित ढंग से तीन भागों में रचना की गई थी। पहले भाग में स्वर्णकलशों से युक्त सात हजार घर थे। दूसरे भाग में चाँदी के कलशों से चौदह हजार घर थे। तीसरे भाग में ताँबे के कलशों से युक्त इक्कीस हजार घर थे। इन तीनों भागों में क्रमशः उत्तम, मध्यम और निम्न वर्ग के लोग अपनी स्थिति के अनुसार रहते थे उस समय वैशाली की जनसंख्या एक लाख चौसठ हजार थी। इस नगर की सुन्दरता का बखान बुद्धदेव अपने शिष्यों से कहते हुए बार-बार यहाँ आने की बात कहते थे। यह वैशाली विदेह गणतंत्र की राजधानी है।”

जैनाचार्य हेमचन्द्र सूरि ने त्रिशष्टिशलाका पुरुष चरित्र पर्व १० श्ल १८४-८५ में कहा है कि धन धान्य एवं समृद्धियों से भरपूर वैशालीनगरी थी उस पर चेटक का शासन था। वैशाली की जनसंख्या का मुख्य अंग ब्राह्मण क्षत्रिय थे। श्री राय चौधरी के शब्दों में—**कट्टर हिन्दूधर्म के प्रति उन क्षत्रियों का मैत्रीभाव प्रकट नहीं होता। इसके विपरीत ये क्षत्रिय जैन, बुद्ध, जैसे अब्राह्मण परंपराओं के प्रबल पोषक थे। मनुस्मृति के अनुसार वे ब्राह्मण राजन्य थे। सुविधित है ब्राह्मण का अर्थ यहां जैन है क्योंकि जैन साधु एवं श्रावक तप, अहिंसा, संयम (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) व्रतों का पालन करते हैं।**

सातधर्म : मगधराज अजातशत्रु (कूणिक) राज्यविस्तार के लिये लिच्छिवियों पर आक्रमण करना चाहता था। उसने अपने मंत्री वस्सकार को बुद्ध के पास भेजा और कहलाया कि वाज्जिगण चाहे कितने ही शक्तिशाली

हो, मैं उनका पूर्ण विनाश कर देना चाहता हूँ। इस कार्य की सफलता के लिये उपाय बतलाइये।

बुद्ध ने मंत्री के वचन सुनकर उसे कोई उत्तर नहीं दिया। पर अपने शिष्य आनन्द के द्वारा पूछने पर वैशालियों के निम्नलिखित सात परिहानिय धर्मों का वर्णन किया।

१. हे आनन्द! जबतक वज्जि पूर्णरूप से निरंतर परिषदों का आयोजन करते रहेंगे।

२. जब तक वज्जि संगठित होकर मिलते रहेंगे, संगठित होकर उन्नति करते रहेंगे तथा संगठित होकर कर्तव्य-कर्म करते रहेंगे।

३. जबतक अप्रज्ञप्त (अस्थापित) विधाओं को स्थापित करते रहेंगे, स्थापित विधाओं का उल्लंघन नहीं करेंगे तथा पूर्वकाल में स्थापित प्राचीन वज्जि विधानों का अनुसरण करते रहेंगे।

४. जबतक वे वज्जि-पूर्वजों का तथा नागरिकों का सम्मान पूजा, समर्थन करते रहेंगे और उनके वचनों का सुनकर मानते रहेंगे।

५. जब तक वे वज्जिकुल की महिलाओं का सम्मान करते रहेंगे और कोई भी कुलस्त्री, कुलकुमारी उनके द्वारा बलपूर्वक अपहृत या विरुद्ध न की जाएगी।

६. जब तक वे नगर या नगर के बाहर वज्जि चैत्यों (जिन-मंदिरों) का आदर सम्मान करते रहेंगे। पूर्ववत् सत्कार बहुमान पूजादि करते रहेंगे और पहले किये गये धर्मानुष्ठानों की अवमानना न करेंगे।

७. जब तक वज्जियों द्वारा अरिहंतों की रक्षा-सुरक्षा, समर्थन किया जाता रहेगा तब तक वज्जियों का पतन नहीं होगा, उनका कोई भी बालबांका न कर सकेगा। उन्नति और उत्थान ही होता रहेगा।

उपर्युक्त विवरण से वैशाली गणतंत्र की उत्तम व्यवस्था, अनुशासन सच्चरित्रता, संगठन एवं धर्मनिष्ठा की पुष्टि होती है। इससे स्पष्ट है कि अरिहंतों और जैन चैत्यों के उपासक होने से वे जैनधर्मानुयायी थे। छब्बीस सौ वर्ष के प्राचीन गणतंत्रों में वैशाली गणतंत्र श्रेष्ठ, सर्वोत्कृष्ट था। यद्यपि भारत में उस समय अनेक गणतंत्र राज्य थे। परन्तु वैशाली राज्य का इतिहास तथा कार्यप्रणाली का विस्तृत वर्णन ग्रंथों से मिलता है। संभवतः इसी कारण से श्री जायसवाल ने इस गणतंत्र को विवरणयुक्त गणराज्य (Recorded Republic) शब्द से संबोधित किया है। जबकि अन्य गणराज्यों का अनुमान कुछ सिक्कों या मुद्राओं से अथवा पाणनीय-व्याकरण के कुछ सूत्रों से या कुछ ग्रन्थों में उपलब्ध संकेतों से किया गया है। विद्वान लेखक ने इसे प्राचीनतम गणतंत्र घोषित किया है। जिसके लिखित साक्ष्य हमें प्राप्त हैं और जिसकी कार्यप्रणाली की झांकी हमें बुद्ध के भी अनेक संवादों से मिलती है। जिसके अनुसार उनके जीवन में आत्मसंयम की भावना थी। वे लकड़ी के तख्त पर सोते थे और वे सदैव कर्तव्यनिष्ठ थे। जब तक उनमें ये गुण रहे तब तक उनका कोई बालबांका न कर सका। वे वज्जि अरिहंतों (जैनतीर्थंकरों) उनके मंदिरों के उपासक थे, वे ब्राह्म्य क्षत्रिय थे। वे जैन धर्मानुयायी थे। उनके आचरण पर जैनधर्म की अमिट गहरी छाप थी।

लिच्छिवियों के विदेशी संबंधों का नियंत्रण अठारह (१८) गणराज्यों की परिषद से होता था। इसका वर्णन बौद्ध और जैनसाहित्य में मिलता है। नौ लिच्छिवियों और नौ मल्लों के साथ मिलकर यह महासंघ (Council) था। जिसे

वज्जि (वृजि) संघ कहते थे। जिसमें आठ अंग थे— १. ज्ञातृक, २. विदेह, ३. लिच्छवी, ४. वृजि, ५. उग्र, ६. भोग, ७. कौरव एवं ८. इक्ष्वाकु इनमें से मुख्य थे वृजि और लिच्छवी।

पाणिनी ने वज्जियों का अलग जाति के रूप में उल्लेख किया है और कोटिल्य ने भी ज्ञातृकों को लिच्छिवियों से अलग माना है। युवांगचांग (चीनी बौद्धयात्री) ने भी वज्जि देश और वैशाली में भेद किया है। उसने लिच्छिवियों को व्रात्य लिखा है।

वैशाली गणतंत्र का अन्त : वैशाली गणतंत्र पर मगध नरेश श्रेणिक बिम्बसार की रानी चेलना (चेटक की पुत्री) के पुत्र अजातशत्रु (कोणिक) का वैशाली, पर आक्रमण घातक प्रहार था। उसका साम्राज्य विस्तार आकांक्षा ने वैशाली का अन्त कर दिया। बुद्ध से भेंट के बाद मंत्री वस्सकार को अजातशत्रु ने वैशाली भेजा उसने वैशाली के लोगों में फूट के बीज बोए अजातशत्रु ने ई० पूर्व ५४४ वर्ष (भगवान महावीर की दीक्षा के चौबीस पच्चीस वर्ष बाद) बहुत बड़ी सेना लेकर वैशाली पर आक्रमण कर दिया जिसका वर्णन जैनागम निर्यावलियाओं में इस प्रकार है—

तब राजा कोणिक (अजातशत्रु) हजारों हाथियों, घोड़ों, रथों और पैदल सेना (चतुरंगिणी सेना) सहित सब सुविधाओं सहित अंग जनपद के बीच में से निकला एवं विदेह जनपद की वैशाली नगरी की ओर युद्ध के लिये गया।

वहाँ पहुँचकर उसने वैशाली को घेर लिया उधर से वैशाली नरेश चेटक अपनी और अपने सहयोगी अठारह गणराज्यों की सेनाओं के साथ अजातशत्रु की सेना से अपने राज्य की रक्षा के लिए युद्धक्षेत्र में आ डटा। प्रलयंकारी घमासान युद्ध हुआ। बारह वर्षों तक युद्ध चालू रहा। अंत में अजातशत्रु की विजय हुई।

आचार्य हेमचन्द्र कृत त्रिशष्टिशलाका पुरुष चरित्र पर्व दस सर्ग बारह में कहा है कि— अजातशत्रु की सेना ने वैशाली में निर्मित बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रतस्वामी के स्तूप को तोड़कर ध्वस्त कर दिया। जो परमार्हत महाराजा चेटक के उपास्य देव का जैन मंदिर था। अजातशत्रु ने अपने मंत्री वस्सकार द्वारा कूटनीति से वज्जियों में फूट डलवाई और उनके उपास्य इष्टदेव बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतस्वामी का चैत्यस्तूप ध्वंस करवाया क्यों कि वस्सकार को बुद्ध ने कहा था कि वज्जि जब तक संगठित रहेंगे एवं वज्जि चैत्यों की रक्षा और सम्मान करते रहेंगे तब तक वज्जियों का पतन नहीं होगा।

जैन परम्परा के अनुसार आर्यावर्त (भारत वर्ष) में सबसे बड़ी जनसंहारक लड़ाई महाराजा चेटक को अपने दोहित्र, मगधराज अजातशत्रु (कोणिक) के साथ लड़नी पड़ी।

अजातशत्रु ने अपने पिता श्रेणिक की मृत्यु के बाद राजगृही से हटाकर अंग जनपद में चंपानगरी को अपनी राजधानी बनाया। इस प्रकार व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं तथा फूट से इतने वैभवशाली महागणतंत्र का विनाश हुआ। महाभारत ने भी गणतंत्रों के विनाश के लिए ऐसे ही कारण बतलाये हैं। भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर से कहा था कि हे राजन ! गणों तथा राजकुलों में शत्रुता की उत्पत्ति का मूल कारण है लोभ और ईर्ष्या द्वेष। जब कोई गण या वंश लोभ के वशीभूत होता है तब दोनों के मेल से पारस्परिक विनाश होता है।

वसुदेव और मगध :

संघदास रचित वसुदेव हिंडी नामक जैन कथा साहित्य प्राचीन इतिहास के कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को परिलक्षित करता है। कृष्ण के पिता वसुदेव अपूर्व सुन्दर थे उनके रूप पर स्त्रियां मुग्ध हो जाती थी अतः उन्हें स्वास्थ्य लाभ के लिये गृह बंदी बना लिया गया। वसुदेव बंदी गृह से निकल गये और विभिन्न देशों में भ्रमण करते हुए वहाँ की श्रेष्ठ सुन्दरियों और राज्य कन्याओं से विवाह किया। एक बार राजा कपिल के पुत्र अंशुमन जो उनका साला भी था वह उनको मलयदेश ले जाना चाहा लेकिन रास्ता भूल जाने के कारण वे विपरीत दिशा में चले गये और पुण्ड्र राजा की राजधानी में पहुँच गये। राजा पुण्ड्र के पिता का नाम सुशेन था जिन्होंने पुण्ड्र को सिंहासन देकर सत्य रक्षित नामक मुनि से निर्ग्रन्थ धर्म में दीक्षा ली। रानी वसुमति ने भी प्रव्रज्या ग्रहण की और आर्या संघ की नेत्री बन गयी। राजा पुण्ड्र के पहले कोई सन्तान नहीं थी परन्तु बाद में एक कन्या का जन्म हुआ जिसे पुत्र बताकर प्रचार किया। एक उत्सव में वसुदेव का उससे परिचय हुआ जो आगे चलकर विवाह बन्धन में परिणित हो गया और इन्हीं की सन्तान महापुण्ड्र के नाम से प्रसिद्ध हुई। यहाँ के लोगों के विषय में कथानक में लिखा है कि यहाँ के श्रेष्ठीगण व्यापार के लिये सुदूर विदेशों में जाते थे। स्थलपथ से ताम्रलिप्त जाते और वहाँ से समुद्री यात्रा करते थे। लेखक के वर्णन से इस शहर के विषय में काफी जानकारी मिलती है। जिसके अनुसार यह शहर मगध के दक्षिण में तथा गया के विपरीत दिशा में था और ताम्र लिप्त और मगध दोनों स्थानों से स्थल पथ द्वारा युक्त अर्थात् राज्यगृह और ताम्रलिप्त को मिलाने वाले वाणिज्य पथ पर अवस्थित एक महत्वपूर्ण वाणिज्य केन्द्र था।

राजा पुण्ड्र के पिता सुशेन और माँ वसुमती का निर्ग्रन्थ धर्म दीक्षा लेना यह प्रमाणित करता है कि यह श्रमण संस्कृति का प्रभावित अंचल था।

इस राज्य से सम्मते शिखर अधिक दूर नहीं था।

राजा पुण्ड्र के बाद उनका दोहित्र यहाँ का राजा बना और वह भी वासुदेव के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पाण्ड्रा गाँव में इस वासुदेव के स्मारक चिन्ह आज भी वर्तमान है। यहाँ एक ध्वन्सावशेष है जो वसुदेव के स्थान के नाम से जाना जाता है। इस सन्दर्भ में श्री हरिप्रसाद तिवारी और नृसिंह प्रसाद तिवारी ने गवेषणा करके लिखा है।

आर्कियोलॉजिकल सर्वे की Report से ताम्रलिप्त पाटलीपुत्र को मिलाने वाले पथ पर देख पाते हैं एक प्राचीन वाणिज्य केन्द्र जिसका नाम पाण्ड्रा (जिला धनवाद) है। हमारी धारणा है प्राचीन पुण्ड्र राजा और उनके दोहित्र महापुण्ड्र की स्मृति से जुड़े प्राचीन नगर का ही अवशेष है यह पाण्ड्रा। पाण्ड्रा बराकर शहर से प्रायः ७ मील पश्चिम में स्वनाम से आज भी विख्यात है। पाण्ड्रा केवल एक बड़ा (धनवाद जिले का सबसे बड़ा) ग्राम ही नहीं यह एक परगने का सदर भी है। वर्तमान काल की दलीलों में भी परगना के रूप में पाण्ड्रा का उल्लेख किया जाता है। बराकर से धनवाद तक बराकर और दामोदर नदी का मध्यवर्ती भू-भाग पाण्ड्रा परगना के अन्तर्गत है। अंग्रेज शासनकाल के प्रारम्भ में यहाँ के प्राचीन मल्लराज वंश को खदेड़कर घाटवाल राजवंशियों ने यहाँ अंग्रेजों के करद राजवंशों की स्थापना की। इन घाटवाल राजवंशियों को आज भी राजा कहा जाता है एवं इनके बहुत से परिवार इस अंचल में निवास करते हैं। घाटवाल का अर्थ है—घाट अर्थात् पार्वत्य पथ रक्षाकारी। इस सम्प्रदाय पर बहुत प्राचीनकाल से ही इस ताम्रलिप्त मगध की संयोगकारी वाणिज्य-पथ की सुरक्षा का दायित्व था। इस अंचल के बंगाली वणिकों की

एक पदवी घाँटी या घाटी है जो इस पार्वत्य वाणिज्य पथ के वाणिज्य केन्द्र से उद्भूत है। पाण्ड्रा गाँव लोक संख्या एवं आयतन दोनों ही दृष्टि से इस अंचल का सबसे बड़ा गाँव है और अकेला ही एक पंचायत है। (दो गाँव की पंचायत करने का प्रस्ताव है)। गाँव का रास्ता आधुनिक नगरों की तरह परिकल्पित है जो कि किसी भी नगर स्थपति को आज भी विस्मित करता है।

वासुदेव हिण्डी में राजा पुण्ड्र और समग्र राज परिवार को जैन धर्म के पृष्ठपोषक रूप में वर्णन करने से स्वभावतः ही लगता है कि पुण्ड्र राजा की यह राजधानी प्राचीन जैन अध्युषित अंचल में थी।

इसी प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि पुण्ड्रा का अवस्थान ताम्रलिप्त से १०० मील उत्तर-पश्चिम में (४५°) है, ह्वेनसांग ताम्रलिप्त से छः सौ ली अर्थात् एक सौ मील उत्तर-पश्चिम में किलिना-सुफलाना या कर्ण-सुवर्ण गए थे। **आर्या मंजुश्री मूलकल्प** के मत से पुण्ड्रवर्धन में शशांक की राजधानी थी। यही पाण्ड्रा मंजुश्री मूलकल्प वर्णित पुण्ड्रा नगरी है। कृष्ण मिश्र के **प्रबोध चन्द्रोदय** नाटक में जो राढ़ देश की अपरूपा रढ़ापुरी की बात आती है वह भी सम्भवतया यहीं पाण्ड्रा या पॉरड़ा (पाँड़रा) को ही निर्देश करती है। इसी पाण्ड्रा परगना से वर्द्धमान पर्यन्त अंचल को शायद पुण्ड्र वर्द्धमान अंचल कहा जाता था।

यहाँ चारों ओर प्राचीन स्तूप, मूर्ति, मन्दिर के भग्नावशेष और ध्वंस स्तूपों का समाहार है। वासुदेव स्थान और कपिलेश्वर मन्दिर का विशालत्व दर्शनीय है। मन्दिर का प्रांगण समतल से प्रायः बीस फुट ऊँचा है। चारों पार्श्व प्राचीरों से घिरे हुए है। विशाल प्रांगण में छः विशाल प्रस्तर निर्मित मन्दिर वर्त्तमान है। इस पाण्ड्रा परगना की पूर्वी सीमा में है पश्चिम बंग की श्रेष्ठ पूराकीर्ति बराकर के सिद्धेश्वरी के मन्दिर आदि। पूर्वोत्तर कोण में है कल्याणेश्वरी का प्रसिद्ध (माँ का स्थान) माइथन, दक्षिण में है तेलकम्प का प्रसिद्ध मन्दिर।

उड़ीसा :

पातांजलि के महाभाष्य में श्रमण और ब्राह्मणों में शाश्विक विरोध कहा गया है। यह विरोध क्या था। वेद कालीन समाज ऋषभदेव के बाद का समाज है क्योंकि ऋषभ युग में अग्नि और कृषि का प्रारम्भ हुआ था। इसीलिए वेदों और पुराणों में ऋषभ का वर्णन उनके माता-पिता के नाम, त्याग और तपस्या का रूप जैन परम्परानुसार ही मिलता है। यहाँ तक कि उनको विरोधी मानते हुए भी उन्हें विष्णु के अवतार के रूप में स्वीकार किया गया है। जैनियों ने उन्हें प्रथम तीर्थंकर माना है। उनकी साधना का रूप यज्ञ नहीं होकर तपस्या थी। उनके दिये उपदेश ही मूल वेद थे जिनके पठन-पाठन के लिये ब्राह्मण वर्ग बनाया गया था। मूल वेदों के विच्छिन्न होने के बाद महाभारत काल में उनका पुनः संकलन किया गया जिसमें अनेक परिवर्तन होने स्वाभाविक थे। इसलिए आज जो वेदों का स्वरूप हमारे पास है वह संकलित वेद का रूप है। साहित्य को लोकप्रिय बनाने के लिये उसे अलौकिक और अपौरुषेय कहा जाता है। यदि कोई शास्त्र नया होता है या किसी पुरुष द्वारा अमुक समय में रचित किया होता है उसकी महत्ता अलौकिक और अपौरुष शास्त्र की अपेक्षा कम आंकी जाती है। इसीलिए संकलित वेदों की महत्ता बढ़ाने के लिए उन्हें अपौरुषेय कहा गया। मूल वेदों के रूप की झलक हमें बहुत कुछ उपनिषदों में देखने को मिलती है। संकलित वेदों के यज्ञ रूप का विरोध करते हुए उपनिषदों में स्पष्ट लिखा है **यज्ञ टूटी नाव के समान है जो इन यज्ञों में विश्वास रखते हैं वो बार-बार जनम-मरण प्राप्त करते रहते हैं।** (मुण्डकोपनिषद १.२.७)। एतरेय ब्राह्मण ८.११ में लिखा है जिस प्रकार निषाद व लुटेरे धनिकों को जंगल में ले जाकर गड्ढे में फेककर उनका धन लूट लेते हैं उसी प्रकार ऋत्विज व पुरोहित यजमानों को गड्ढे में फेककर (यज्ञादि द्वारा) उनका धन लूट लेते हैं अर्थात् यज्ञादि द्वारा उनको अध्यात्मिक पतन की ओर ढकेल देते हैं। उपनिषद में क्षत्रियों के अध्यात्मिक विकास की परम्परा है। ये सही है कि उच्चकोटि का त्याग और तपस्या वहीं कर सकता है जिसके मन में निश्चय भाव प्रगाढ़ हो और प्राण जाये तो जाये पर निश्चय नहीं जाये इस बात पर दृढ़ हो। इसी दृष्टिकोण का प्रतिपादन प्राच्य भारत की सांस्कृतिक परम्परा में हुआ और इसका दर्शन उड़ीसा के इतिहास में सम्राट मेघवाहन, खारवेल के चरित्र में हम करते हैं।

भारतवर्ष के इतिहास में उड़ीसा एक महत्वपूर्ण भौगोलिक खण्ड रहा है। यद्यपि आज इसका क्षेत्रफल उतना विशाल नहीं है जितना कि प्राचीन काल में था। प्राचीन काल में औड्राष्ट्र, कलिंग, ककोद, उत्कल, दक्षिण कौशल और गंगराडी इन छः क्षेत्रों को मिलाकर उड़ीसा बना था। कभी ये एक राजा के अधीन रहे और कभी-कभी स्वाधीन। कलिंग तीन भागों में बटा हुआ था। दक्षिण कलिंग, मध्य कलिंग और उत्तर कलिंग। उत्तर कलिंग को उत्कल भी कहते थे। पुराणों के आधार पर राजा सुद्योमन के तीन पुत्र थे। गया, उत्कल और विनीतास्व। पहले ये तीनों प्रदेश कलिंग में शामिल थे। इसी लिये कलिंग के राजाओं को त्रिकलिंगाधिपति की उपाधि दी गई थी। यह किंद्वान्ती है कि रामचन्द्रजी वन प्रस्थान के समय उत्कल गोदावरी होकर पंचवटी गये थे। महाभारत में भी कलिंग का वर्णन मिलता है। कौरवों और पांडवों के युद्ध में कलिंग की सेना ने कौरवों के पक्ष में बड़ी वीरता के साथ युद्ध किया था। प्राचीन पुराणों तथा मिस्र ग्रीक एवं चीनी यात्रियों के विवरण में भी उत्कल के सम्बन्ध में वर्णन मिलता है। जैन शास्त्रों में कलिंग को आर्य देश माना है। जबकि वैदिक साहित्य में कलिंग को अनार्य देशों की श्रेणी में रखा है।

उड़ीसा के साथ जैनधर्म का संपर्क अठारवें तीर्थंकर अरनाथ के समय से है। त्रिषष्टि-शलाका पुरुष चरित्र में कहा गया है दीक्षा लेने के बाद उन्होंने प्रथम भिक्षा राजपुर में ग्रहण की। महाभारत में राजपुर को कलिंग की राजधानी बताया गया है। तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का कलिंग देश से गहरा सम्बन्ध रहा है। खंडगिरि की गुफाओं के मूल नायक पार्श्वनाथ है। रानी गुफा की पार्श्ववेष्टनी भगवान पार्श्वनाथ के जीवन प्रसंगों को दर्शाती है। नगेन्द्र नाथ बसु ने भगवती सूत्र, क्षेत्र समास और भावदेव सूरि द्वारा लिखित चौबीस तीर्थंकरों की जीवनी पर आलोचना करते हुए लिखा है कि पार्श्वनाथ ने अंग, बंग और कलिंग ने जैन धर्म का प्रचार किया था। ताम्रलिप्त बंदरगाह से कलिंग की ओर प्रस्थान किया और कोप कटक में धन्य नानक गृहस्थ के घर से आहार ग्रहण किया था। वर्तमान में यह कोप कटक बालेश्वर जिले का कुपारी ग्राम है जो ई० पूर्व आठवीं शताब्दी में कोपारक ग्राम के नाम से प्रचलित था। भगवान पार्श्वनाथ धन्य गृहस्थ के अतिथि बने थे इस स्मृति को जीवित रखने के लिये कोप कटक को धन्य कटक कहा जाने लगा। भवदेव सूरि के पार्श्वनाथ चरित्र में आया है कि कलिंग को यवनों के हाथों से मुक्त करने के पश्चात् कुशस्थल की राजकुमारी प्रभावती के साथ पार्श्वनाथ का विवाह हुआ। रानी गुम्फा के एक अपहरण दृश्य को बहुत से लोग इसी घटना का चित्रण समझते हैं।

जैन कथा साहित्य में भी कलिंग राज्य का उल्लेख है। चित्रसेन और पद्मावती चरित्र में वर्णन है कि किसी समय कलिंग देश में बसन्तपुर नामक एक राज्य था। यहाँ के राजा थे वीरसेन। उनकी पत्नी का नाम था वनमाला और पुत्र का नाम था चित्रसेन। वीरसेन का मन्त्रीपुत्र रत्नसार चित्रसेन का परम मित्र था। इन दोनों का रूप कामदेव को भी लजाने वाला था। इन्हें देखकर बसन्तपुर की लड़कियाँ अपलक हो जाती थी। समय-समय पर नगर की लड़कियाँ इन दोनों को देखने के लिए राजपथ पर खड़ी हो जाती। चित्रसेन और रत्नसार के इस अनिन्द्य रूप ने जनसाधारण को ईर्ष्यालू बना दिया, अतः प्रजागण हिंसा की दूषित दृष्टि से इन दोनों कुमारों के चरित्र को कलुषित करने लगे। अन्ततः उन लोगों ने संघवद्ध रूप से बसन्तपुर के राजा को इन्हें निर्वासित करने के लिये बाध्य कर दिया।

झूठे कलंक को सिर पर लिए दोनों मित्र निर्वासित हो गए और एक गहन जंगल में जाकर आश्रय लिया। इसी जंगल में एक रात्रि जबकि चित्रसेन सो रहा था रत्नसार ने दूर से आता हुआ कोलाहल सुना। उसने चित्रसेन को जगाया। फिर दोनों मित्र जिस ओर से कोलाहल सुनायी पड़ रहा था उसी ओर चले।

कुछ देर पश्चात् दोनों एक मन्दिर में पहुँचे। मंदिर में भगवान शान्तिनाथ की एक मूर्ति विराजमान थी। वहाँ स्वर्गवासी किन्नर-किन्नरियाँ उत्सव कर रही थी। किन्नरियों का नृत्य देखकर दोनों मित्र मुग्ध हो गये थे तभी मन्दिर की दीवाल पर एक असाधारण सुन्दर स्त्री की पाषाण मूर्ति देखी। नारी देह में इतना रूप उन्होंने कहीं नहीं देखा था। अतः राजपुत्र चित्रसेन ने तय किया कि किसी भी प्रकार से वह इस असामान्य सुन्दरी से विवाह करेगा।

इस सुन्दर नारी का नाम था पद्मावती। पद्मावती पुरुषों से घृणा करती थी। एक शिल्पी ने उससे विवाह करना चाहा था किन्तु पद्मावती तो किसी भी पुरुष से विवाह करने को तैयार नहीं थी। उस शिल्पी के हृदय में पद्मावती की जो रूप राशि प्रविष्ट हो गयी थी उसी से उस प्रेमी शिल्पी ने इस मूर्ति की सृष्टि की थी।

यहाँ चित्रसेन ने अपनी और पद्मावती की पूर्व जन्म की कहानी सुनी। पूर्व जन्म में उसने हंस रूप में जन्म ग्रहण किया था और यह पद्मावती थी उसकी प्रेमिका हंसिनी। ये दोनों एक सरोवर में रहते थे।

एक दिन यहाँ एक सौदागर विश्राम करने आया। वह जिन भक्त था वह जिनपूजा करने के पश्चात् सबको अन्न दानकर तब स्वयं अन्न ग्रहण करता है। हंस और हंसिनी रूपी चित्रसेन और पद्मावती ने इस पुण्य कार्य की खूब प्रशंसा की। इसी पुण्य के फलस्वरूप हंस ने चित्रसेन के रूप में एवं हंसिनी ने पद्मावती के रूप में जन्म ग्रहण किया।

राजपुत्र चित्रसेन तत्काल स्वदेश को लौट गए और पद्मावती को खोजने लगे। कुछ ही दिनों में उनकी मुलाकात पद्मावती से हो गयी। अब चित्रसेन ने पद्मावती से अपने मन की बात कही।

पद्मावती बोली— नहीं, मुझे पुरुषों से घृणा है।

तुम पूर्व जन्म में जिस पुरुष से प्रेम करती थी उससे भी तुम घृणा करती हो?— चित्रसेन ने जानना चाहा। वह पुरुष कहाँ है? प्रश्न किया पद्मावती ने।

तुम्हारे सन्मुख। आँखें खोलकर देखो, देख पाओगी— जबाव दिया चित्रसेन ने।

तदुपरान्त उसने पद्मावती को पूर्व भव सुनाया। तब पद्मावती ने उसे गौर से देखा। पुरुषों में इतना रूप उसने कभी नहीं देखा था।

चित्रसेन के रूप को देखकर पद्मावती मुग्ध हो गयी। उसका पुरुष-द्वेष दूर हो गया। चित्रसेन और पद्मावती विवाह बन्धन में बँध गये।

उसी समय बसन्तपुर में भगवान महावीर का आगमन हुआ कलिंग वासियों को उनकी अमरवाणी सुनाने के लिए। राजा वीरसेन उनके उपदेश से मुग्ध होकर पुत्र चित्रसेन को लौटा लाए एवं उसे बसन्तपुर का राजा बनाकर स्वयं दीक्षित हो गए। इसके पश्चात् पद्मावती के एक पुत्र हुआ।

इस प्रकार भगवान महावीर के समय में भी कलिंग के तार मगध से जुड़ते हैं। जैन हरिभद्रियवृत्ति के अनुसार कलिंग के शासक महावीर के पिता के मित्र थे जिन्होंने महावीर को उनके धर्म के उपदेश हेतु आमंत्रित किया था। हरिवंश में भी महावीर की कलिंग यात्रा की पुष्टि होती है तथा आवश्यक सूत्र में तोषाली और मोषाली में उनके द्वारा उपदेश देने की पुष्टि होती है। जैनग्रंथों के अनुसार प्राचीनकाल में तोषाली ने अनेकों जैनधर्म उपदेशकों को आकर्षित किया है तथा वहाँ एक जैनमूर्ति है जिसे तोषालिक राजा की निगरानी में स्थापित किया गया था।

करकण्डुचरिउ करकण्डुराजा के जीवन का आश्चर्यजनक विवरण देता है। वह पार्श्वनाथ के बाद और महावीर के पूर्व कलिंग के राजा थे। एवं पार्श्वनाथ की परम्परा के अनुयायी। उत्तराध्ययन सूत्र के अठारहवें अध्ययन में इनका विवरण है। इस विवरण से जाना जाता है कि जब वह कलिंग में राज्य करते थे तब पांचाल में द्विमुख, विदेह में नमि और गान्धार में नगई राज्य करते थे। वहीं यह भी कहा गया है कि इन नर-वृषभों ने स्वपुत्र को राज्य देकर श्रमण दीक्षा ग्रहण कर ली थी। बौद्ध कुम्भकार जातक में करकण्डु को प्रत्येक बुद्ध के रूप में स्वीकार किया गया है और उसकी राजधानी दण्डपुर बतायी गयी है। इन समस्त कारणों से यह ज्ञात होता है कि कलिंग में जैन धर्म का प्रवर्तन भगवान पार्श्वनाथ ने ही किया। उस प्राचीन काल में कलिंग में जैन धर्म प्रचलित था यह महाभारत के इस कथन से भी समर्थित होता है कि **अनार्य कलिंग वासियों से दूर रही कारण वे न वेद मानते है न यज्ञ, यहाँ तक कि देवता भी उनके हाथों से बलि ग्रहण नहीं करते।** वौधायन धर्मसूत्र में भी कलिंग को अनार्य देश कहकर अभिहित किया गया है।

उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है कि चम्पानगरी में पालित नामक एक वणिक रहता था। वह भगवान महावीर का शिष्य था। वह श्रावक रूप में निर्ग्रन्थ धर्म का ज्ञाता था। एक बार वह वाणिज्य के लिए जहाज द्वारा पिथुण्ड नगरी में गया। इसी पिथुण्ड का उल्लेख खारवेल की हाथी गुम्फा के शिलालेख में भी जैन तीर्थ के रूप में किया गया है।

नन्द राजाओं के समय कलिंग मगध साम्राज्य के अन्तर्गत था। हाथी गुम्फा लेख की छठी और बारहवीं पंक्ति में दो बार नन्द राजाओं का उल्लेख हुआ है। ये नन्द राजा कौन थे इसे विद्वानों में लेकर पार्थक्य होने पर भी सम्भवतः वे पुराणों में उल्लिखित कलिंग विजेता सर्वक्षत्रान्तक महापद्म नन्द थे। कलिंग को पराजित कर वे विजय स्मारक के रूप में कलिंग जिन को मगध ले गए थे। कलिंग जिन कौन थे इस पर भी विद्वानों के विभिन्न मत हैं। नन्दराजा का कलिंग जिन को मगध ले जाना और खारवेल के समय तक उसे नष्ट न कर उपासना करने से यह भी लगता है कि नन्दराज भी जैनधर्मावलम्बी थे।

चन्द्रगुप्त मौर्य जैन थे। उनका साम्राज्य बहुविस्तृत होने पर भी कलिंग उसके अन्तर्गत नहीं था। नन्दवंश के दुर्बल हो जाने पर लगता है कलिंगवासी पुनः स्वाधीन हो गए। चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक ने कलिंग जय किया। वह युद्ध कितना भयानक हुआ था यह अशोक के तेरहवें शिलालेख में विवृत है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में सम्प्रतिकालीन कलिंग का उल्लेख है। कलिंग उन्हीं २५.५ आर्य देशों के अन्तर्गत था जहाँ जैन साधु बिना किसी बाधा के विचरण कर सकते थे।

कलिंगाधिपति महाराजा खारवेल का नाम सिर्फ कलिंग के इतिहास में ही नहीं बल्कि जैन इतिहास में भी स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाना चाहिए। महाराजा खारवेल ने न केवल कलिंग को भारत में एक महत्वपूर्ण साम्राज्य के रूप में स्थापित किया बल्कि जैन संस्कृति के विकास में भी अमूल्य योगदान दिया। अबतक चले आ रहे मगध साम्राज्य के प्रभुत्व को उन्होंने समाप्त कर दिया। मगध पति पुश्यामित्र शुंग जिसने श्रमणों पर अत्याचार किया अनेक मंदिरों, चैत्यों को नष्ट या परिवर्तित किया उस पर दो बार आक्रमण कर उसे दण्डित एवं पराजित किया। खारवेल का परिचय हमें उदयगिरि के हाथी गुम्फा शिलालेख के अलावा हेमवंत पट्टावली (थेरावली) से भी मिलता है। जिसमें कलिंग के इतिहास की जानकारी दी हुई है। इस पट्टावली के रचनाकार आचार्य हेमवंत सूरि थे जो माथुरी वाचना के कर्ता आचार्य स्कन्दिलसूरि के शिष्य एवं पट्टधर थे। इनका समय ई० सन् चौथी शताब्दी का माना जाता है। महामेघवाहन खारवेल के शिलालेख से खारवेल के वंश का थोड़ा ही परिचय मिलता है परन्तु इस थेरावली में उनके वंश का विस्तृत परिचय हमें मिलता है।

हाथीगुंफा वाला खारवेल का शिलालेख उड़िसा प्रदेश के भुवनेश्वर तीर्थ के निकटस्थ कुमारगिरि (उदयगिरी) की एक चौड़ी गुफा के ऊपर खुदा हुआ है। उड़िसा में प्राचीन समय से जैन धर्म की प्रतिष्ठा एवं सम्राट खारवेल का जिनधर्मी होने की पुष्टि सर्वप्रथम इस शिलालेख द्वारा स्थापित हुई। हिमवन्त स्थविरावली में कलिंगपति खारवेल के सम्बन्ध में जो उल्लेख हैं, उनसे हाथीगुंफा के शिलालेख में उपलब्ध कतिपय विवरणों की न केवल पुष्टि ही होती है अपितु शिलालेख में उत्कीर्ण दो तीन तथ्यों पर भी विशिष्ट प्रकाश पड़ता है।

(१) हाथीगुंफा के शिलालेख में खारवेल के वंश का परिचय देते हुए लिखा है :-

चेतराजवसवधनेन— अर्थात् चेत वंश का वर्धन करने वाले ने। शिलालेख के इस वाक्य के आधार पर अनेक विद्वान् कलिंगपति खारवेल को चेदि वंश का, तो कुछ विद्वान् चैत्रवंश का मानते हैं। लेकिन—

हिमवंत स्थविरावली में खारवेल को चेटवंशीय बताते हुए लिखा है कि कूणिक के साथ युद्ध में हारने के बाद चेटक ने सल्लेखना लेकर अपने प्राण त्याग दिया। उनका एक पुत्र शोभन राय अपने श्वसुर राजा सुलोचन की चरण में चला गया। राजा सुलोचन के कोई पुत्र न होने के कारण उनके बाद शोभनराय कलिंग की गद्दी पर आसीन हुए। इसी शोभनराय की पाँचवीं पीढ़ी में चंडराय के शासन में मगध के नंद राजा ने कलिंग पर आक्रमण कर वहाँ से जिन मूर्ति को मगध में ले जाकर स्थापित किया। शोभनराय की आठवीं पीढ़ी में खेमराज हुए जिनके समय में अशोक ने कलिंग पर आक्रमण कर नर संहार किया था। खेमराज के पुत्र बुडुराज ने कुमारगिरि और कुमारीगिरि नाम के पर्वतों पर ग्यारह गुफाओं का निर्माण कराया था। इन्हीं बुडुराज के पुत्र भिक्खुराय कलिंग के शासक हुए जो आगे जाकर महामेघवाहन खारवेल के नाम से प्रसिद्ध हुए। बुडुराज का नाम हमें हाथीगुम्फा शिलालेख में भी मिलता है। इस प्रकार हिमवंत पट्टावली में खारवेल का वंश राजा चेटक के पुत्र शोभनराय से प्रारम्भ होता है जिसकी पुष्टि खारवेल के शिलालेख से होती है।

चेटक के पुत्र शोभनराय के दसवीं पीढ़ी में खारवेल हुए थे। इस प्रकार खारवेल के शिलालेख में विद्यमान **चेतराजवसवधनेन** नामक संदिग्ध वाक्यांश को हिमवन्त स्थविरावली में पूर्णतः स्पष्ट कर दिया गया है।

२) हाथीगुम्फा के शिलालेख में श्री जायसवालजी के वाचन के अनुसार अंगशास्त्रों के उद्धार से सम्बन्धित केवल इतना ही उल्लेख है कि— मौर्यकाल में विच्छिन्न हुए ६४ अध्याय वाले अंगसप्तिक का चौथा भाग फिर से तैयार करवाया।

मुरियकाले वोछिंने च चोयठिसतिकंतरिये उपादयति,

हिमवन्त स्थविरावली में अंग-शास्त्रों के उद्धार के सम्बन्ध में स्पष्ट उल्लेख के साथ-साथ यह भी बताया गया है कि कुमारगिरि पर खारवेल द्वारा आयोजित उस चतुर्विध संघ के सम्मेलन में किन-किन श्रमणों, श्रमणियों, श्रावकों और श्राविकाओं ने भाग लिया तथा खारवेल की प्रार्थना पर श्रमणों ने अवशिष्ट जिन प्रवचन को भोजपत्र, ताड़पत्र आदि पर लिखा।

३) इस शिलालेख की सातवीं तथा आठवीं पंक्ति में लिखा है खारवेल अपने राज्य के आठवें वर्ष में एक बहुत बड़ी सेना के साथ गोरखगिरि पर कब्जा कर राजगृह को घेर लिया था। खारवेल के शौर्य के भय से यवन राज डिमिट्रियस मथुरा का घेरा उठाकर अपने देश वापिस लौट गया। इसके बाद मगध पर दूसरा आक्रमण अपने राज्य के बारहवें वर्ष में किया। और मगधपति पुष्यमित्र को पराजित कर कलिंग जिन मूर्ति को जिसे नंदराज कलिंग से पाटलीपुत्र में लाये थे उनको पुनः कलिंग में ले जाकर स्थापित किया। शिलालेख और स्थविरावली दोनों से यह निष्कर्ष निकलता है कि खारवेल ने उत्तरापथ से दक्षिणापथ तक अपना राज्य और प्रभुत्व का विस्तार किया। खारवेल के हाथीगुम्फा शिलालेख के अलावा और भी शिलालेख कलिंग की पहाड़ियों में मिले हैं।

खुला जिले में एक पहाड़ी भुवनेश्वर से ३ मील उत्तर में है। यह पर्वत तीन विभागों में विभाजित है अर्थात्

खण्डगिरि, उदयगिरि और नीलगिरि। खण्डगिरि १२३ फुट ऊंचा तथा उदयगिरि ११० फुट ऊंचा है। मुख्य गुफायें उदयगिरि में ४४, खण्डगिरि में १९ तथा नीलगिरि में ३ हैं। इनके अलावा अनेकों छोटी-छोटी गुफाएं हैं।

उदयगिरि— उदयगिरि में जितनी गुफाएं हैं उनमें से सबसे बड़ी और सबसे उत्तम चित्रकारी से चित्रित **रानी हन्सपुरी गुफा** है। इस गुफा में बहुत से दृश्य अंकित हैं जिनमें कुछ नष्ट भी हो गये हैं फिर भी कुछ दृश्यों में स्पष्ट रूप से एक साधु की यात्रा को दिखलाते हैं जो धार्मिक उत्सव में नगर के भीतर चल रहे हैं लोग अपने घरों से उनका दर्शन कर रहे हैं। घोड़े जा रहे हैं, हाथी चल रहे हैं, प्यादे जा रहे हैं तथा स्त्री पुरुष हाथ जोड़े हुए साधु के पीछे जा रहे हैं। कहीं-कहीं खड़े हुए लोग झुक जाते हैं और फलादि चढ़ाते हैं तथा आशीर्वाद ले रहे हैं। इस पर्वत में श्रीपार्श्वनाथ स्वामी बहुत अधिक प्रतिष्ठित है अन्य दूसरी गुफाएं हैं। जयविजयगुफा, छोटीहाथीगुफा, अलकापुरीगुफा, मच्छपुरीगुफा, पनसगुफा, पातालपुरीगुफा, बाघ गुफा और गणेश गुफा आदि।

मंचपुरी गुफा के ५ दरवाजे हैं— चौथे द्वार पर एक लाइन का शिलालेख है जो इस भांति है—

खरस महाराजस कलिङ्गाधिपतिनो महामेघवाहन सकूड़े पसीरिनोघलेनम्

अर्थात् चतुर महाराज कलिंग देश के स्वामी महामेघवाहन या कूड़े पसीरी की गुफा।

इस गुफा के सातवें कमरे में दूसरा लेख है जो इस भांति है—

कुमार वदुरवस लेनम् (यह लेख पहले से प्राचीन है) अर्थात् कुमार वदुरव की गुफा— शायद यह कुमार राजा खारवेल के पुत्र हो।

इस मञ्चपुरी गुफा में ऊपर के खाने में तीसरा लेख है सो इस तरह का है—

अरहन्त पसादायम् कलिङ्गानम् समनानम्लेनं कारितम् राज्ञोलालकस।

हथी साहस पपोतस् धुतुनाकलिंग चक्रवर्तितो श्री खारबेलस।

अग महिसिना कारितम् (यह लेख हाथी गुफा के लेख से कुछ ही पीछे का है।)

अर्थात् यह श्रीअरहन्त के प्रासाद या मंदिर रूप गुफा कलिंग देश के श्रमणों के लिये बनाई गई है— यह गुफा कलिंग चक्रवर्ती राजा खारबेल की मुख्य पटरानी द्वारा कराई गई जो राजा लालकस की पुत्री थी। यह लालकस, राजा हथीसहस के पौत्र थे। इसको स्वर्गपुरी गुफा भी कहते हैं।

गणेशगुफा— यहाँ भी कुछ दृश्य हैं जो श्री पार्श्वनाथ के चरित्र से सम्बन्ध रखते हो।

धानघर और हाथीगुफा— हाथी गुफा ५० फुट से २८ फुट है मुख ११ फुट ऊंचा है— भीतों पर कुछ शब्द अंकित हैं। प्रगट रूप से साधुओं या यतियों के नाम हैं। छतकी चट्टान पर १७ लाइन का लेख है १५ फुट से ६ फुट की माप है। यही प्रसिद्ध खारबेल का लेख है।

सर्पगुफा— इसके द्वार की बाईं ओर पहली शताब्दी पूर्व का एक शिलालेख है ये दो लाइन का है।

कम्मस हलरिन, २. णय च पसादो।

अर्थात् कम्म और हलरिवन का प्रासाद। इसी सर्पगुफा द्वार पर बड़ी हाथीगुफा के पास एक शिलालेख है—चूलसमय को था जे गाय चूल कर्मन् का अजेय कोठा।

बाघगुफा— इस पर भी दूसरी शताब्दी का शिलालेख है जिनकी दो पंक्तियां इस प्रकार है—

नगरअरंबदस, २. सभूतनोलेनम्— अर्थात् नगरजसभूति की गुफा।

हरिदासगुफा— इस पर एक शिलालेख इस भांति है— और ई० सं० पहली शताब्दी पूर्व का—**चूलकुमसपसातोकथाजेयाच**। अर्थात् चूलकुम का प्रासाद और अजेय कोठा।

जंबेश्वरगुफा— यहाँ एक शिलालेख मञ्चपुरी गुफा के समय का जो लेख ब्राह्मणी अक्षरों में है। **महामदास वारियाय ना कियस लेनम्** अर्थात् महामद की स्त्री नाकियस की गुंफा।

छोटीहाथीगुफा— इस पर भी एक अपूर्व लेख हैं। **अगरिच.....सलेनम्**।

खण्डगिरि :

तत्त्वगुफा नं० १— इसमें चित्र है तथा इसपर शिलालेख हैं— यह पहली शताब्दी पूर्व का है।

तत्त्वगुफा नं० २— इसपर भी लेख है— **पद मुलिकस कुसु मास लेनम्** कुसुम सेवक की गुफा यह सब से प्राचीन लेख है। खंडगिरि के लेखों में (Oldest of all inscriptions in Khandgiri)

नवमुनिगुफा— इसके भीतर १०वीं शताब्दी का लेख है जो इस भाँति हैं—

१. **ऊँ श्रीमत् उद्योतकेशरीदेवस्य प्रवर्द्धमाने विजय राज्ये संवत् १८**

२. **श्रीआर्य्यसंघप्रतिबद्ध ग्रहगुलबिनिर्गतदेशीगणाचार्य्य श्रीकुलचन्द्र**

३. **भट्टारकस्यतस्यशिष्यशुभचन्द्रस्य।**

इस लेख में स्पष्ट लिखा है कि उद्योतकेशरीदेव के उन्नतिशील राज्य के १८वें वर्ष में श्री शुभचन्द्र आचार्य यहाँ विराजित थे जो श्री आर्य्यसंघगृहकुलदेशीगण के आचार्यकुलचन्द्रभट्टारक के शिष्य थे।

इसी गुफा में टूटी हुई भीत पर दूसरा शिलालेख इसी समय का है, जिसके वाक्य ये हैं—

ऊँ श्री आचार्य्य कुलचन्द्रस्य तस्य शिष्यरवल्लशुभचन्द्रस्य.....छात्र विजो

इससे भी शुभचन्द्र आचार्य्य का नाम प्रगट है— इस गुफा के दाहने कमरे में एक एक फुट ऊँची दस तीर्थकरों की मूर्तियाँ है उनमें शासनदेवी बनी हुई है। श्रीपार्श्वनाथजी की दो मूर्तियाँ हैं। जिनके ऊपर सर्पफणमण्डप किये हुए हैं— उनकी विशेष मान्यता प्रगट है और इस गुफा के आगे

बारहभुजागुफा— इसका नाम बारह भुजा इसलिये है क्योंकि बरामदे की दीवार के बाईं तरफ एक देवी की मूर्ति है जिसके बाहर भुजायें हैं।

(नोट : यह जिनशासन की प्रति मूर्ति मालून होती है क्योंकि जिनवाणी में आचारंग आदि बारह अंग होते हैं।)

बरामदे से होकर तीन द्वार वाले लम्बे कमरे में जाना होता है ये द्वार अब गिर गये हैं छत की रक्षा अब दो नये स्तम्भ देकर की गई है। भीतों पर पद्मासन तीर्थकर की मूर्तियाँ देवी सहित अंकित हैं। पीछे की तरफ श्री पार्श्वनाथ की बड़ी खड़गासन मूर्ति है। जिसपर ७ फल का मण्डप है इस पर देवी का चिन्ह अंकित नहीं है- इन सब मूर्तियों के भिन्न-भिन्न चिन्ह दिये हुए हैं। इसी के पास दक्षिण में—

त्रिशूलगुफा है— जिसका कमरा २२ फुट लम्बा ७ फुट चौड़ा व ८ फुट ऊंचा है। इसमें भी २४ तीर्थकरों की मूर्तियाँ अंकित हैं। इन्हीं में ७ फण मण्डप सहित श्री पार्श्वनाथजी की खड़गासन मूर्ति तथा अन्त में श्री महावीर स्वामी की मूर्ति है। इन २४ तीर्थकरों के समुदाय में भी श्री पार्श्वनाथजी को श्री महावीर स्वामी के पहले न देकर मध्य में विराजित किया है। (अर्थात् इससे यह सिद्ध होता है कि श्री पार्श्वनाथजी की विशेष भक्ति को दरशाने वाली यह गुफा है। यह भी सम्भव है कि ये मूर्तियाँ श्री पार्श्वनाथजी के निर्वाण के बाद और महावीर स्वामी के निर्वाण के पहले विराजमान की गई हो।

पन्द्रहवें तीर्थकर का आसन एकवेदी से ढका हुआ है जिस पर तीन पद्मासन सुन्दर मूर्तियाँ श्री पार्श्वनाथ भगवान की है इस गुफा की मूर्तियों का आकार पहले की गुफाओं की मूर्तियों के आकार से सुन्दर है। बाई तरफ वहाँ से आने से ५० या ६० फुट ऊंचा देखने से वहाँ जैन मूर्तियाँ अंकित हैं—

पश्चिम की तरफ २ खण्ड की गुफा है— इसको सिंहगुफा या ललतेन्दुकेसरीगुफा कहते हैं। पहले खण्ड के कमरे में जैन तीर्थकर की मूर्तियाँ अंकित हैं— जिनमें सबसे मुख्य श्री पार्श्वनाथ की है उसमें एक शिलालेख भी अंकित है—

१. ऊँ-श्रीउद्योतकेसरीविजयराज्य संवत् ५ ।, २. श्रीकुमारपर्वत स्थाने जीर्ण वापि जीर्ण इसान ।, ३. उद्योतित तस्मिन् थाने चतुर्विंशति तीर्थकर ।, ४. स्थापिता प्रतिष्ठा काले हरि ओप जसनंदिकं ।, ५. क्ष....हु....ति....दुथा..... ।, ६. श्री पार्श्वनाथस्य कर्मक्षयाय ।

(नोट : इस लेख में राजा उद्योतकेशरी का नाम व संवत् ५ आया है तथा खण्डगिरि का नाम कुमार पर्वत लिखा है- यहाँ जीर्ण मंदिर व बापी पहले थे ऐसा प्रकट है-वहीं २४ तीर्थकर स्थापित किये गये। प्रतिष्ठा के समय में यहाँ श्री बसनन्दिआचार्य मौजूद थे) इसके आगे एक झील है जिसको आकाश गंगा कहते हैं—

अनन्तगुफा— खंडगिरि की दाहिनी तरफ एक लम्बा कमरा है, जो २३ फुट चौड़ा व २४ फुट लम्बा व ६ फुट ऊंचा है, चार द्वार हैं। पीछे की भीत पर ७ पवित्र चित्र अंकित हैं। उनमें स्वस्तिक, त्रिशूल, आदि हैं- यहाँ लेख ई० सन् से पहले के हैं।

दोहद समनानम् लेनम् दोहद के साधुओं की गुफा तथा दंडाचार अर्थ समझ में नहीं आया।

एक दूसरी गुफा में ५ पंक्ति का लेख है।

१. श्रीशान्तिकर सौराज्याद आचन्द्रार्कम् ।, २. गुहे गुहे खदि ? संज्ञे पुनः अंगे-भाग ।, ३. जास्य बिरजे जने इज्या गर्भ समुद् ।, ४. भूतो नन्नं तस्य सुतो भिषक भीमतो ।, ५. याचते वान्य प्रस्थम् सम्वत् सरात् पुनः ।

(नोट : इस लेख में जो शिलालेखों की नकल दी गई है वह एपिग्रेफिका इन्डिया की जिल्द तेरहवीं सन् १९१५-१६ सफा १५९ से १६६ तक से ली गई है।

उपरोक्त शिलालेखों से इतना पता तो सहज ही में लग जाता है कि खण्डगिरि उदयगिरि का नाम १०वीं तथा ११वीं शताब्दी तक **कुमारकुमारोपर्वत** प्रसिद्ध था। त्रिशूल गुफा के ऊपर एक सफेद पुता हुआ जिनमन्दिर हैं जिसकी मिति निश्चित नहीं है—यहाँ से दक्षिण की तरफ पत्थर की चट्टान ऊपर जैन तीर्थकरों की कई मूर्तियाँ अंकित हैं जो इधर-उधर पत्थरों के गिरने से साफ एवं प्रगट मालूम नहीं होती हैं—यहाँ पर भी एक गुफा थी जिसमें भी जैनतीर्थकरों की मूर्तियाँ थी—पर्वत की चट्टान के मध्य में एक जैन मंदिर है जिसमें पाँच जैन मूर्तियाँ हैं।

खंडगिरि के दक्षिण पश्चिम में नीलगिरि है—यहाँ **राधाकुंड और श्यामकुंड** हैं।

इन गुफाओं में से हाथीगुफा के लेख सन् ई० से १५८ या १५३ वर्ष पहले की है— तथा उदयगिरि की स्वर्गपुरी, मञ्चपुरी, सर्पगुफा, बाघगुफा, जाम्बेश्वर, हरिदास, ऐसी ६ गुफाओं में तथा खण्डगिरि की तत्वगुफा दो और अनंतगुफा इस तरह ९ गुफाओं में शिलालेख ब्राह्मी अक्षरों में हैं। तथा ये गुफाएं हाथीगुफा के आस पास के समय में ही खोदी गई थी अर्थात् सन् ईस्वी से दूसरी शताब्दी से पहले नहीं खोदी गई थीं—तो भी सम्भव है, उनमें से कुछ दूसरी गुफाएं हाथीगुफा से भी पहले की हो क्योंकि राजा खारवेल ने अपने बड़े लेख के अंकित करने को यह पहाड़ी इसीलिए चुनी होगी कि यह पहाड़ी जैनसाधुओं के विराजने से पवित्र हो चुकी है। यहाँ की स्वाभाविक या कृत्रिम गुफाओं में जैन साधु अवश्य पहले से ही विराजते होंगे।

The whole style of the architecture and sculpture in the older caves here points to a period quite as early as that of the Sanchi gateways and the small vihara at Bhaja, and we cannot be far wrong in ascribing most of them at least to the 2nd century before our era. Nor is any trace of Buddhism found among them. (A History of Indian and eastern architecture--James fergusson)

हाथीगुंफा इस शिलालेख को सर्वप्रथम अट्टारह सौ बीस ईसवीं में पादरी स्टलिंग ने देखा था। असुरक्षा के कारण लेख जर्जर अवस्था में था। करीब सौ वर्षों के प्रयत्न के बाद सन् उन्नीस सौ अट्टारह में यह पढ़ा गया और यह निश्चित किया गया कि यह लेख कलिंगाधिपति महामेघवाहन राजा खारवेल का है। यह शिलालेख पन्द्रह फुट के करीब लम्बा और पाँच फुट चौड़ा है। इसमें सत्रह पक्तियाँ खुदी हुई हैं।

.....

इस शिलालेख में खारवेल के राजत्व के तेरह वर्ष तक का वर्णन हमें मिलता है उसके बाद का नहीं। इसका क्या कारण है। अपने राजत्व के बारहवें वर्ष में उन्होंने समस्त उत्तरापथ को जीता था जिसमें काश्मीर शामिल था राजतरंगिनी जिसमें काश्मीर के इतिहास का वर्णन है वहाँ मेघवाहन का वर्णन हमें मिलता है। यह मेघवाहन भी जैनधर्मी थी जिसने काश्मीर में अहिंसा का प्रचार किया।

राजतरंगिनी में मेघवाहन के विषय में लिखा है—

Then the subjects, guided by the ministers, proceeded to the land of Gandhara and brought Meghavahana, whose fame shone afar.

This virtuous (king), after he had prohibited the slaughter of living being in his country, helped the butchers and others to a sinless livelihood (by grants) from his own treasury.

In the reign of this king, who hated killing like a Jina, the (effigy of an) animal in ghee was used at the sacrifice (kratu) and one in pastry at the 'offering to the spirits' (bhutabali).

His queen Amrtaprabha caused a lofty Vihara called Amrtabhavana to be constructed for the benefit of foreign Bhiksus.

The spiritual guide (guru) of her father, who had come from a foreign country called Loh, and who in the language of that (country) was designated as stunpa build. (Dr. R.C. Majumdar doyen of Indian History)

“खारवेल कोरा विजेता ही न था। वह सुशासक और शान्तिकालीन कलाओं में भी दक्ष था। वह स्वयं एक अच्छा संगीतज्ञ था और नृत्य-समारोहों जैसे मनोरंजक आयोजनों द्वारा लोकरंजन करता था। उसने सिचाई एवं अन्य जनोपयोगी कार्यों पर बहुत धन व्यय किया था। वह एक बहुत बड़ा निर्माता भी था तथा उसने राजधानी को उपवनों, तोरणी और भवनों से सुसज्जित किया था। नगर के बीच उसका विशाल महाविजय-प्रासाद था। वह कट्टर जैन था। मगध और अंग से लूट के रूप में वह उन जैन मूर्तियों को ले गया जिन्हें कलिंग से कोई नन्दराज उठा ले आया था। खारवेल ने कुमारी पर्वत (खण्डगिरि) में अनेक गुफाएँ बनवायी और संभवतः उसके आसपास ही एक विहार भी बनवाया था।”

-- R.C. Majumdar

हिमवन्त पट्टावली— जैनपट्टावलियों में यह हिमवन्त पट्टावली सबसे प्राचीन पट्टावली है। इसके रचयिता आचार्य हेमवन्तसूरि हैं। उनका हमें उल्लेख श्रीनन्दी सूत्र की स्थविरावली में मिलता है— **जेसिइमो अणुओगो पयरइ अज्जवि अड्डुभरहम्मि, बहुनयर निग्गयजसे ते वन्दे खंदिलायरिए। ततो हिमवन्त महन्त विक्कमे धिइ परक्कमणंते, सझायणंतधरे हिमवन्त वंदिमोसिरसा।। कलियसुय अणुओगस्स धारए धारए व पुव्वणं, हिमवन्त खमासमणे वन्दे णागज्जुणापरिए।।**

आचार्य हिमवन्तसूरि आर्य स्कन्दिल के पट्टधर थे। अतः इतिहास के लिए प्रस्तुत पट्टावली बड़ी उपयोगी है। इसमें वर्णित घटनाओं की पुष्टि खारवेल के शिलालेख के वर्णन से होती है।

जसभदो मुणि पवरो, तप्पयसोहंकरो परो जाओ।

अट्टमणंदोमगहे, रज्जंकुणइ तयाअइलोही।।

सुट्टिय सुपडिवुद्धे, अज्जे दुत्रे वि ते नमंसांमि।

भिक्षुराय-कलिंगा-हिवेण सम्माणिए जिट्टे।।

—हेमवन्त पट्टावली वीर निर्वाण संवत् और जैनकाल गणना पृष्ठ १६२

खारवेल के बाद ओड़ीशा का इतिहास कुछ शताब्दी तक अंधकार में विलुप्त हो जाता है और इस अवधि

के दौरान जैनधर्म की परिस्थिति का निर्धारण करना कठिन है। शिशुपाल गढ़ में खुदाई के दौरान महाराजा राजाधिराज धर्माधार का एक सोने का सिक्का प्राप्त हुआ है जो तीसरी शताब्दी का है तथा डॉ० ए० एस० अलतेकर के अनुसार वह संभवतः मुरुंडवंश के एक जैन राजा थे जो खारवेल युग के बाद ओड़ीशा को नियंत्रित करते थे। मुरुंड जैनधर्म के अनुसरण करने वाले माने जाते थे। किन्तु खारवेल के पश्चात् धीरे-धीरे बौद्धधर्म लोगों में लोकप्रिय हो गया। दाठावंश से हम जानते हैं कि गुहाशिव (सी ४०० ई० स०) कलिंग का राजा था जिसने जैनधर्म से बौद्धधर्म स्वीकार किया और समस्त निर्ग्रन्थ जैनियों के कलिंग से प्रताड़ित कर दिया था। क्रमशः शैवसंप्रदाय की लोकप्रियता एवं वैष्णवभक्ति के प्रभाव से जैनधर्म के प्रभाव का हास हुआ तथापि यह पूर्णतः समाप्त नहीं हुआ और सहिष्णु जनता द्वारा मूक समर्थन मिलता रहा जिसके कारण जैन-संस्कृति का दीप प्रज्ज्वलित होता रहा है। जैनधर्म के रत्नत्रयी उच्च आदर्श जैसे उचित श्रद्धा (सम्यकदर्शन), उचित ज्ञान (सम्यक ज्ञान) तथा उचित आचरण (सम्यक चरित्र) लोगों को मोक्ष प्राप्ति की दिशा में प्रेरित करने में कभी भी असफल नहीं रहे।

सातवीं शताब्दी ईस्वी सन् में हेन सांग ने कलिंग में जैनधर्म के प्रभाव को घोषित किया है तथा उसके अनुसार नास्तिकों में अधिकांश निर्ग्रन्थ थे। भारत में जैनियों के पवित्र जीवन ने उसका ध्यान आकर्षित किया था तथा उसने उल्लेख किया है कि निर्ग्रन्थ एवं उनके अनुयायी निर्वस्त्र घूमते थे इसलिए सबका ध्यान आकर्षित होता था। वे हिंसा द्वारा अपने केशों को उखाड़ देते थे, उनके शरीर का चर्म सुख जाता था एवं उनके पैर सख्त थे तथा शरीर सूखी हुई लकड़ी की भाँति दिखते थे, जो नदी के किनारे विचरण करते थे जिसे वे पुण्य कर्म मानते थे। बानपुर के शिलालेख में शैलोद्भव राजा धर्मराज (छठवीं-सातवीं शताब्दी ई० स०) के विषय में उल्लेख मिलता है कि उनकी रानी कल्याणदेवी ने जैन भिक्षु एकसाटा प्रबुद्धचन्द्र को धार्मिक उद्देश्य हेतु उपहार में भूमि प्रदान की थी। वे अर्हतचार्य नासिकचन्द्र के शिष्य थे तथा शब्द एकसाटा संभवतः यह संकेत करता है कि उन्होंने केवल एक वस्त्र धारण करने का संकल्प लिया था। इस दान से शैलोद्भवों की केवल धार्मिक सहिष्णुता ही प्रकट नहीं होती है अपितु इससे यह भी प्रकट होता है कि उस समय समाज में जैन आचार्यों का सम्मान था।

अनेकों उत्थान पतन के बावजूद खंडगिरि और उदयगिरि जैनधर्म के लोकप्रिय सांस्कृतिक केन्द्र रहे हैं। नवमुनि गुफा के उद्योत केशरी (११वीं शताब्दी ई० स०) के एक शिलालेख में कुलचन्द्र के शिष्य के रूप में शुभचन्द्र का उल्लेख मिलता है जो आर्यसमूह के गृहकुल से संबंधित थे तथा देशीगण के माने जाते थे। कल्याणीचालुक्य तथा देवगिरि के यादव शिलालेखों में शुभचन्द्र तथा कुलचन्द्र जैन गुरुओं के रूप में वर्णित हैं। ललातेंदु केशरी गुफा के उद्योतकेशरी के एक अन्य अभिलेख में यह उल्लेख मिलता है यशस्वी उद्योतकेशरी ने सुविख्यात कुमार पर्वत पर पाँच वर्ष तक विजयपूर्ण शासन किया था जहाँ विशीर्ण पुष्करों और विनष्ट मंदिरों का उसने जीर्णोद्धार किया और चौबीस तीर्थकरों की प्रतिमा स्थापित की। सोमवसमी शासक दर्शनीय धार्मिक स्थल मुक्तेश्वर मंदिर के पुष्कर के निचले हिस्से की दीवारों के बाहरी तारखों पर अंकित किए जैन तीर्थकरों के चित्रों से प्रभावित हुए थे जिसका निर्माण उनके शासनकाल में किया गया था। आगे बालासोर से प्राप्त अभिलेख में एक कुमारसेन का उल्लेख मिलता है जो १०वीं-११वीं शताब्दी ई० स० का जैन उपदेशक प्रतीत होता है। श्री नन्द के शिष्य उग्रदित्य द्वारा संस्कृत में संकलित काव्य **कल्याणकारक** को त्रिकलिंग देश के रत्नगिरि जैन मंदिर में उत्कीर्ण किया गया पाया गया है जिसमें कुमारसेन के साथ-साथ वीरसेन, सिद्धसेन, दशरथगुरु तथा पन्नास्वामी आदि के नाम उल्लिखित थे। ओड़ीशा के विभिन्न हिस्सों से प्राप्त किए गए जैन तीर्थकरों की सुंदर मूर्तियों से यह ज्ञात होता है कि ८वीं और ११वीं शताब्दी में ओड़ीशा में व्यापक रूप से जैनधर्म का प्रभाव था और बहुत संभव है कि इसका प्रादुर्भाव राष्ट्रकूटों

के प्रभाव से हुआ था जो जैन धर्म के प्रबल संरक्षक थे। राष्ट्रकूट राजा गोविन्द तृतीय ने कोशल, कलिंग, बंग और ओड्रक पर विजय प्राप्त की थी। किन्तु ओड़ीशा में जैनधर्म की कीर्ति और प्रभाव बहुत दिनों तक नहीं टिका तथा यहाँ पर सामान्यतः वैष्णवधर्म ने अपना प्रभुत्व कायम करना आरंभ किया और विशेषकर जगन्नाथ के पूजन के बाद जैनधर्म का हास हो गया। जगन्नाथ मंदिर के ऐतिहासिक तथ्यों से मंडलपांजी द्वारा यह उद्घाटित हुआ है कि १२वीं शताब्दी ई० स० की समाप्ति पर गंग राजा मदन महादेव द्वारा धवली, वानिबकेश्वर आदि उपत्यकाओं में जैन सिद्धों एवं बौद्धभिक्षुओं को सजा दी गई थी।

डॉ० लक्ष्मीनारायण साहु के मतानुसार उड़ीसा की जगन्नाथ संस्कृति पर भी श्रावक प्रभाव है। उड़ीसा के जगन्नाथ मन्दिर में कोइलि बैकुण्ठ है। यह कोइलिबैकुण्ठ श्रावक संस्कृति से जुड़े केवल्य शब्द से ही आया है कोइलि, ऐसा डॉ० नीलकण्ठ साहु का मत है।

जगन्नाथ ऋषभदेव के ही प्रतीक है इसके बहुत से प्रमाण हैं। पुरी और भुवनेश्वर में आषाढ़ शुक्ला द्वितीया को एवं चैत्र शुक्ला अष्टमी को रथ यात्रा निकलती है। श्रावक संस्कृति में भी आषाढ़ शुक्ला द्वितीया तीर्थकर ऋषभ के गर्भ कल्याणक का शुभ लग्न है। उनके जन्म दिन पर ही रथ यात्रा का उत्सव होता है। तीर्थकरों का गर्भ, जन्म, दीक्षा, ज्ञान प्राप्ति एवं मोक्ष प्राप्ति जिस तिथि को होती है उन तिथि को उत्सव मनाते हैं। इन तिथियों में श्रावकगण चैत्ययात्रा कराते हैं। चैत्ययात्रा के साथ रथयात्रा का मेल है। इसमें चैत्य निर्माण कर उसमें जिनमूर्ति बैठाते हैं। फिर उसको लेकर नगर परिक्रमा देते हैं। यह रीति रथ यात्रा से मिलती है। एतदर्थ रथ यात्रा की भाव कल्पना में श्रावक संस्कृति के प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

इसके अतिरिक्त उड़ीसा की शैव संस्कृति के क्रम विकास में भी श्रावक संस्कृति की कुछ देन है। भुवनेश्वर अंचल के बहुत से शिव मंदिर श्रावक शिल्पियों द्वारा निर्मित हुए हैं। इन सब मंदिरों के शीर्ष स्थान पर त्रिशूल है। त्रिशूल शैव संस्कृति से नहीं ऋषभनाथ संस्कृति से युक्त है।

उड़ीसा के लोक समाज में कल्पवृक्ष पूजा खूब जनप्रिय है। कहना नहीं होगा यह कल्पवृक्ष पूजा श्रावक संस्कृति से जुड़ी हुई है। उस समय की श्रावक संस्कृति बहुत से क्षेत्रों में भारतीय आर्य शिल्प संस्कृति के विकास का साधन बनी है। केवल उड़ीसा ही नहीं समस्त भारत की आर्य और अनार्य संस्कृति को श्रावक संस्कृति का अनुदान मिला है ऐसा डॉ० बुलहर जी मानते हैं।

“The characteristic feature of Jainism is it’s claim to universality. It also declares its objects to be to lead all men to salvation and to open it’s arms not only to the noble Aryans but also to the low born Sudra and even to the alien deeply despised in India as the Mlechha.” -- G. Buhler.

जैनियों ने उड़ीसा के भाषा वैज्ञानिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी तथा जैनियों के अहिंसा का सिद्धान्त ओड़ीशा के लोक-कथा बाउल चरित एवं अन्य साहित्यिक विधा में स्थान पाया। ओड़ीसा के भागवत में ऋषभनाथ और उनके सौ पुत्रों के वार्तालाप से जैनधर्म के महान आदर्शों की जानकारी मिलती है जबकि सरलादास के ओड़ीया महाभारत में जनुघंट उपकथा (१४-१५वीं शताब्दी ई० स०) में यह वर्णन मिलता है कि राजा जनुघंट नग्नअवस्था में विचरण करते हुए अपने दैनिक भोजन की व्यवस्था भिक्षा रूप में करते थे जो निर्भ्रान्तरूप से जैन

प्रभाव को स्थापित करता है। प्राचीन महात्म्य (सी० १८वीं शताब्दी ई० स०) के चित्रचंडाल उपकथा में भी जैनधर्म के प्रभाव को लक्षित किया जा सकता है।

बालेश्वर जिले के चम्पा ग्राम में शान्तिनाथ भगवान की एक सुन्दर मूर्ति है और आउषपुर में है भगवान ऋषभनाथ की मूर्ति। उड़ीसा के कटक में एक सुन्दर जैन मन्दिर है। यहाँ बहुत सी तीर्थंकर मूर्तियों में पार्श्वनाथ, ऋषभनाथ, महावीर, अजितनाथ आदि की मूर्तियाँ उल्लेख योग्य है। यहाँ ऋषभनाथ को शिवरूप में सजाकर पूजा करने की भी रीति है। क्यूंझर जिले के आनन्दपुर सब डिविजन से नौ मील दूर कोडसिडी ग्राम से सौ से भी अधिक तीर्थंकर मूर्ति, यक्ष-यक्षिणियों की मूर्तियाँ विक्षिप्त भाव में पड़ी हुई है। यह स्थान पहले तोषल राज्य के अन्तर्गत था। शायद यहीं अतीत का विख्यात शैलपुर ग्राम था। यहाँ से प्राप्त श्रावक संस्कृति से जुड़ी ये सब शिल्प-कलाएँ मानो हमारे कानों में अतीत की कथा कह जाती है। मानो ये पाषाण फलक पर रचित अतीत युग के इतिहास का एक-एक पृष्ठ है। बल्लभ भाई के शब्दों में हम कह सकते हैं।

“The Jain architecture is nothing but a kind of history, that it is a standing and living record and it supplies us a more vivid and lasting picture of a nation than history does.”

उड़ीसा के किसी-किसी पहाड़ी अंचल के आदिवासियों के मध्य कड़ा पद्मतोला गीत सुना जाता है। इन गीतों में भी श्रावक संस्कृति का प्रभाव है।

सरला महाभारत पर श्रावक संस्कृति का बहुत कुछ प्रभाव लगता है। इस ग्रन्थ के एक स्थान पर कहा गया है—

राधे चक्रे बूलू आछे सात ताल ऊचे।
ताले ऊपरे पटाल आछे जे सुसञ्चे।।

यहाँ राधा चक्र शब्द श्रावक संस्कृति से युक्त हरिवंश पुराण में लिया गया लगता है। संस्कृत महाभारत में राधा चक्र का सन्धान कही नहीं मिलता।

उड़ीसा के जगन्नाथ दास की भागवत में ऋषभनाथ की कथा है। इसके पंचम अध्याय में ऋषभदेव ने अपने सौ पुत्रों को जो उपदेश दिया है उस पर केवल श्रावक संस्कृति का प्रभाव ही नहीं बल्कि उसमें श्रावक संस्कृति को ही उजागर किया है जैसे—

श्री श्री ऋषभदेव उवाचः
भी पुत्र माने सावधान,
सुन है आमार वचन।
जे प्राणी जे कार्यमान,
निरत करे आचरण
से प्राणी व्यर्थ एई संसारे
पड़े नरक महाघोरे।

केवल जगन्नाथ दास की भागवत ही नहीं चैतन्यदास विरचित विष्णु गर्भ पुराण ग्रन्थ में भी ऋषभदेव और भरत का चरित्र है। इसमें भरतादि दस भाई ऋषभदेव से धर्म शिक्षा ग्रहण करते हैं। इस भाँति श्रावक व सराक संस्कृति ने उड़ीसा साहित्य पर अपना विशेष प्रभाव डाला है।

मानभूम : बंगाल और बिहार से उड़ीसा जाने के लिये मानभूम जिले से ही होकर जाना पड़ता है। अतः यह एक बहुत महत्वपूर्ण क्षेत्र था जो बंगाल और बिहार तथा उड़ीसा से संलग्न है। इस पूरे जिले में असंख्य जैन पुरावशेष बिखरे हुए हैं और यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि मानभूम जैन पुरातत्वों की जितनी उपेक्षा की गयी है उतनी अन्यत्र किसी भी क्षेत्र की नहीं। सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग ने सफा प्रान्त का वर्णन किया है जिससे कनिंघम ने मानभूम जिले के बड़ा भूम परगना को बड़े बाजार को इस सफा प्रान्त को मुख्यालय के नाम से उल्लेख किया है। कुछ लेखकों ने सफा प्रान्त की राजधानी डालमी बताया है। डालमी में प्राचीन जैन पुरातत्वशेष पाये जाते हैं।

यह मान्यता है कि भगवान महावीर ने सफा प्रान्त में विचरण किया था। और उनके उपदेशों ने वहाँ के आदिवासी जाति के लोगों को प्रभावित किया था।

पुरुलिया से लगभग चार मील की दूरी पर कांसाई नदी के किनारे स्थित गाँव बलरामपुर सामान्यतः पल्मा बलरामपुर के नाम से जाना जाता है। बलरामपुर में एक मंदिर है जिसमें असंख्य मूर्तियाँ हैं जो स्पष्टतः जैन तीर्थकरों की मूर्तियाँ हैं।

जयपुर रेलवे स्टेशन से चार मील दक्षिण में बोरम में एक बड़ा गाँव स्थित है जहाँ तीन मंदिर नष्ट हो रहे थे जिसे सराफों अथवा साधारण जैनियों ने निर्मित करवाया था। इन तीनों मंदिरों की आकृति एक समान है। इन मंदिरों में जैन मूर्तियाँ हैं तथा ये मूलरूप से जैन तीर्थ स्थल हैं। बोरम से लगभग एक मील की दूरी पर दक्षिण में भी एक तीर्थ मंदिर का स्थान ले लिया है।

मानभूम जिले के मुख्यालय पुरुलिया से कुछ मीलों की दूरी पर एक अन्य गाँव है चंदनक्यारी, जहाँ अधिकांश संख्या में जैन पुरावशेष पाए गए थे। चंदनक्यारी से प्राप्त हुए जैनतीर्थकरों की मूर्तियाँ जो कि पटना संग्रहालय में संग्रहित हैं, तथा भारत में प्राप्त जैनपुरावशेषों का एक उत्कृष्ट संग्रह है, इनकी कलाकृति बड़ी बारीक एवं भव्य है। वे सभी ग्यारहवीं शताब्दी की हैं। चंदनक्यारी से पाँच मील के भीतर अन्य दो गाँव हैं जिनका नाम है कुम्हरी और कुमारडागा, यहाँ से भी कुछ जैन मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

मानभूम जिला में प्राप्त अन्य प्राचीन जैनपुरावशेषों में से विशेष उल्लेखनीय योग्य है बड़ाबाजार से बीस मील उत्तर-पूर्व में स्थित छोटे से गाँव पकबिरा के जैन मंदिर एवं उसकी कला-कृतियाँ। इन मंदिरों के अतिरिक्त कुछ टीले भी हैं जो कुछ बड़े मंदिरों या स्तूपों के अपशेष हैं। जैन परंपरा यहाँ स्पष्ट रूप से कुछ बड़े तालाबों तथा कुछेक टीलों में द्रष्टव्य हैं। यह दुःख की बात है कि मंदिरों एवं बिखरे पड़े अवशेषों को नष्ट होने के लिए छोड़ दिया जाता है। यहाँ खुदाई से जैन संस्कृति के महत्वपूर्ण पक्ष का उद्घाटन हो सकता है।

बुधपुर के पड़ोसी गाँवों में प्राप्त अधिकांश मूर्तियों की पूजा वर्ष में एक बार की जाती है। कुछ मूर्तियाँ जैन मूर्तियों के सादृश्य हैं तथा कुछ मूर्तियाँ लोगों द्वारा हटा दी गई हैं।

एक अन्य गाँव दारिका है जो चेचगाँव गढ़ खंडहरों से तीन मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित है वहाँ भी अधिकांश संख्या में प्राचीन अवशेष, सरोवर, टीले एवं टुकड़े पाए गए हैं जो स्पष्टतः जैनमूल के हैं। वेग्लर ने वहाँ एक कसौटी पत्थर की जैन मूर्ति को देखा था।

मानभूम के जिला मुख्यालय पुरुलिया से लगभग चार मील पर स्थित गाँव छर्ना में कुछ प्राचीन मंदिरों के अवशेष पाए गए हैं। ये भी स्पष्टतः जैन मूल के हैं। वहाँ पर चैत्यों में जैन परम्परा के देवी-देवताओं की विखंडित मूर्तियाँ पायी गयी हैं। पड़ोस के ही गाँव भानगढ़ में एक मूर्ति के दो खंडित टुकड़े पाए गए थे तथा तीसरा टुकड़ा पुराने ईंट की ढेर से प्राप्त हुआ था। यह मूर्ति भगवान ऋषभ देव की है।

बड़ाबाजार से पच्चीस मील पश्चिम में स्थित दुल्मी से खंडित जैन मूर्तियों का दूसरा महत्वपूर्ण अवशेष पाया गया है। दुल्मी सुवर्णरेखा नदी के किनारे स्थित एक छोटा सा गाँव है। वहाँ पर असंख्य टीले हैं एवं उनमें कुछ पत्थर के हैं तो कुछ ईंट के। ऐसा प्रतीत होता है कि संभवतः पुराने शहर के सबसे उत्तरी कोने पर जैन मंदिर अवस्थित थे।

दुल्मी से कुछ मील की दूरी पर एक छोटा सा गाँव देउली है। देउली में प्राचीन मंदिरों का एक समूह है। वे सभी जैनमंदिर प्रतीत होते हैं। इस क्षेत्र में शोध एवं खोज से यह निश्चित है कि कुछ और स्मृतिचिन्ह (अवशेष) प्राप्त हो सकते हैं। जब पुरातत्वज्ञ बेग्लर देउली के नजदीक एक गाँव सोइस्सा में गया था तो उसने बरगद के वृक्ष के नीचे कुछ मूर्तियाँ पायी जिनमें से अधिकांश जैनमूर्ति थी। यह दुःख की बात है कि उस क्षेत्र में पुरातत्व अवशेषों की उपेक्षा ने उच्छृंखलता को बढ़ावा दिया और आज बेग्लर द्वारा देखी मूर्तियों का कोई पता नहीं है। अन्य ऐसे भी असंख्य गाँव हैं जिन्हें बेग्लर नहीं देख पाया किन्तु वहाँ भी निश्चित रूप से जैन मूर्तियाँ थीं। पुरुलिया से लगभग छः मील की दूरी पर एक ऐसा ही महत्वपूर्ण गाँव कर्चा है जहाँ अधिकांश संख्या में जैन मूर्तियाँ एवं पाँच प्राचीन टीले हैं। यदि इनकी खुदाई की जाए तो कुछ महत्वपूर्ण परिणाम सामने आ सकते हैं। कर्चा से लगभग एक मील पूर्व की ओर स्थित भवानीपुर में ऋषभनाथ की एक मूर्ति पायी गई है। इसके अतिरिक्त अन्य वृक्ष के नीचे कुछ अन्य मूर्तियों के साथ पद्मावती और धरणेन्द्र की मूर्तियाँ पाई गई हैं। धरणेन्द्र एवं पद्मावती की मूर्तियों को अब हर-पार्वती नाम से जाना जाता है।

कर्चा से लगभग तीन मील की दूरी पर एक अन्य गाँव अनाई है जो कंसाई नदी के किनारे स्थित है। अनाई गाँव के पास ईंट के प्राचीन मंदिरों के अवशेष प्राप्त होते हैं। पुरुलिया हुरा रोड पर स्थित लदुर्का के नजदीक (समीप) बाउरीडीह में हाल में ही पाँच जैन मूर्तियों की प्राप्ति हुई है। यह बहुत ही महत्वपूर्ण तथ्य है कि सामान्य दर्शक या पर्यवेक्षक भी पुरुलिया हुरारोड जाते समय देख सकते हैं कि रास्ते पर किस प्रकार प्रत्येक गाँव में जैन-मूर्तियाँ बिखरी पड़ी हैं।

कतरासगढ़ जो कि एक महत्वपूर्ण कोलियरी है यह कभी जैन संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थान था। कतरासगढ़ रेल स्टेशन से आधा मील दक्षिण के अन्तर्गत दामोदर नदी के दोनों किनारों पर अधिकांश संख्या में प्राचीन जैन प्रतिमाएँ उपेक्षित पाई गयी हैं।

दामोदर नदी के किनारे धनबाद के चेचगाँवगढ़ में अधिकांश संख्या में अवशेष एवं मंदिर हैं। वेग्लर ने भी इस अंचल का दौरा किया था तथा उसके रिपोर्ट में यह पाया जाता है कि ये जैन अथवा श्रावक मंदिर थे। अतः यह अंचल कभी जैन धर्म के प्रभाव में था जिसका प्रभाव हम पड़ोस के विलोंजा गाँव में प्राप्त जैन मूर्तियों से जान सकते हैं।

अत्यधिक आश्चर्य की बात है कि मानभूम ऐसा जिला है जहाँ जैनपुरावशेष अधिकांश संख्या में उपेक्षित रूप में पड़े हुए हैं जिनका अन्वेषण बाकी है। जितनी अधिक खोज की जाती है उतनी ही अधिक कलाकृतियों के बारे में जानकारी होती है। बलरामपुर परगना के एक छोटे से गाँव पवनपुर प्राचीनकाल में निश्चितरूप से एक महत्वपूर्ण जैन धर्म का केन्द्र था। यहाँ अधिक संख्या में नष्ट हुए मंदिर एवं भग्न मूर्तियाँ प्राप्त होते हैं।

मंदिर के चारों ओर तीर्थकरों की मूर्तियों के ध्वंसावशेष मिलते हैं। अन्य छोटा सा गाँव है पार जो अनारा स्टेशन से चार मील की दूरी पर स्थित है। निश्चित रूप से वहाँ भी जैन पुरावशेष होंगे किन्तु उस अंचल में कोई खोज नहीं की गई है।

सिंहभूम जिला में बेनुसागर तथा अन्य क्षेत्रों में वर्तमान प्राचीन अवशेषों से यहाँ जैन धर्म के प्रचार-प्रसार पता चलता है। कोल्हण के एकदम दक्षिण-पूर्व में केसनगढ़ गाँव के दक्षिण-पश्चिम में स्थित लालगढ़ में समरूप स्तूप या टीले देखे गए हैं। एक अन्य छोटा गाँव राउम जो महूलिया से दो मील की दूरी पर ढलभूम में स्थित है, में कुछ धूलिकण, तालाब (सरोवर) तथा प्राचीन तांबे के धातुमूल हैं और ये सभी एक समय में यहाँ पर शहर की उत्पत्ति का संकेत करते हैं। राउम के संबंध में ओ माले ने उल्लेख किया है कि इसमें कुछ अवशेष थे जो संभवतः श्रावकों के अंश लिए हुए थे। उत्कल या कलिंग राज्य (ओड़ीशा) की सीमा के साथ मानभूम एवं सिंहभूम जिले में जैन धर्म ने कैसे अपनी जड़ मजबूत की यह अब अज्ञान नहीं है। उस समय उत्कल तथा इन दो जिलों के मध्य में चिन्हित प्राचीन व्यापार मार्ग थे। सिंहभूम भी ओड़ीशा के प्रसिद्ध जैन सम्राट खारवेल के साम्राज्य में सम्मिलित था। ओड़ीशा भी महावीर वर्द्धमान के समय से जैन धर्म का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था जिन्होंने कलिंग में व्यक्तिगत रूप से अपने धर्म का प्रचार किया था।

बिहार-बख्तियारपुर सड़कमार्ग पर नवादा रेलवे स्टेशन से लगभग दो मील की दूरी पर गुनवा या गुनवाद नामक अन्य महत्वपूर्ण स्थान है। गुनावा में निर्मित मंदिर कुंथुनाथ, वासुपूज्य और पार्श्वनाथ को समर्पित है जो विभिन्न कालों में बनाए गए हैं। वहाँ गौतम स्वामी के चरणचिन्ह है तथा एक जल मंदिर है।

साहाबाद जिले के सीमावर्ती गया जिले के औरंगाबाद मंडल से दूरवर्ती स्थान पर अत्यधिक संख्या में जैन अवशेष पाए गए हैं। रफीगंज के दक्षिण-पूर्व में स्थित दो मील पर पछड़ पहाड़ में एक गुफा है और पार्श्वनाथ की एक विशाल मूर्ति है तथा अन्य छोटी मूर्तियाँ भी हैं। जैनियों का अन्य महत्वपूर्ण स्थान श्रावक पर्वत है जो रफीगंज से तीन मील की दूरी पर स्थित है। वहाँ पर्वत में एक गुफा है जहाँ पार्श्वनाथ की एक सुन्दर प्रतिमा है।

बंगाल :

भारतीय इतिहास के वर्तमान स्वरूप में हमें बंगाल के इतिहास की जानकारी क्रमबद्ध रूप से सातवीं शताब्दी में शशांक के समय से मिलती है। उससे पहले के ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा क्यों की गयी, क्या कारण रहा ? यह जानना आवश्यक है। ब्राह्मण ग्रन्थों में बंगाल को अनार्य क्षेत्र माना गया था। सातवीं शताब्दी में धार्मिक उन्माद के प्रवाह और विद्वेष की भावना के कारण शैव वाहिनियों ने गाँव-गाँव में जाकर वहाँ के प्राचीन निदर्शनों को नष्ट तथा परिवर्तित किया और प्राचीन काल से चली आने वाली सांस्कृतिक परम्परा को जबरन धर्म परिवर्तन द्वारा समाप्त करने का प्रयास किया। इस प्रकार लगभग ११०० साल के इतिहास का दोहन कर उसकी तस्वीर को धुधला कर दिया गया। वर्तमान में कुछ प्रबुद्ध विद्वानों ने उपलब्ध साहित्यिक एवं पुरातात्विक खोजों का आलोचनात्मक अध्ययन कर बंगाल के प्राचीन इतिहास के महत्वपूर्ण तथ्यों को सामने लाने का प्रयास किया है। उन्हीं के द्वारा उद्घाटित तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में बंगाल के प्राचीन इतिहास की सही तस्वीर आपके समक्ष प्रस्तुत कर रही हूँ।

इस संदर्भ में सबसे प्रथम शान्तिनिकेतन के आचार्य क्षितिमोहन सेन का यह कथन बहुत ही महत्वपूर्ण है जिसमें उन्होंने कहा है—

**आमादेर प्राचीनतम धर्मर जेसब निर्दर्शन पाउया जाय
ताहा सवई जैन ताहार परे बौद्धयुग,
ताहार परे वैदिक धर्मर मतवाद एसे छिल।**

अर्थात् हमारे प्राचीनतम धर्म के जो निर्दर्शन मिलते हैं वे सब जैन हैं उसके बाद बौद्ध युग और बौद्ध युग के बाद वैदिक युग आया। सिर्फ निर्दर्शन ही नहीं प्राचीन साहित्य भी इस बात की पुष्टि करता है।

प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र बंग से इस क्षेत्र का नाम बंग पड़ा। यही कारण है कि बंगाल में बंग जाति के लोग सबसे प्राचीन माने जाते हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता के अन्त में वहाँ से बौग नामक जाति इस क्षेत्र में आकर बसी थी। प्रो० रमा प्रसाद चंदा, प्रो० प्राणनाथ विद्यालंकार, डॉ० राधाकुमुद मुखर्जी आदि इतिहासकारों के अनुसार सिन्धु सभ्यता श्रमण संस्कृति से प्रभावित थी। ब्राह्मण ग्रन्थों में बंगाल का वर्णन अनार्य देश के रूप में है जबकि जैन भगवती सूत्र में बंग की गणना आर्य देशों में की गयी है। चौबीस तीर्थंकरों में से बीस तीर्थंकरों का निर्वाण क्षेत्र सम्मत् शिखर बंगाल के अति निकटवर्ती क्षेत्र में अवस्थित है। सम्मत् शिखर को पार्श्वनाथ पर्वत कहा जाता है। आज भी बंगाल में सबसे ज्यादा भगवान पार्श्वनाथ का प्रभाव देखने को मिलता है।

यहाँ की प्राप्त प्राचीन मूर्तियों में पारसनाथ की मूर्तियों की प्रचुरता है। बंगाल में रोग और विष हरणकारी देवता के रूप में भगवान् पार्श्वनाथ के विषय में लिखा है कि उन्होंने जनहित के लिये देश-देशान्तर भ्रमण किया, एक बार पुण्ड्रदेश में आये और वहाँ से ताम्रलिप्त गये। दक्षिण राढ़ अंचल में तुंगिया नामक एक प्राचीन नगर था जहाँ पार्श्वनाथ कई बार आये थे। परवर्ती काल में यह श्रमण संस्कृति का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया था। भूमिजों में एक गोत्र परश बहुत प्रचलित है। डॉ० तपन चक्रवर्ती का मानना है कि पार्श्वनाथ का प्रभाव बंगाल में इतना प्रबल रहा जितना किसी अन्य देवता का नहीं। पार्श्वनाथ की शासनदेवी पद्मावती की भी यहाँ बहुत मान्यता है। जिसके कारण गंगा की एक धारा का नाम पद्मा पड़ा।

गंगा की दो शाखाएं भागीरथी और पद्मा बंगाल की संपदा और समृद्धि का प्रतीक है। सगर राजा के पौत्र भागीरथ के नाम से गंगा की पश्चिमी धारा को भागीरथी कहा जाने लगा तथा ऐसा माना जाता है कि इसी गंगा की जलधारा से सगर पुत्रों को मुक्ति प्राप्त हुई थी। तभी से ये विश्वास प्रचलित हो गया कि भागीरथी के जल स्पर्श से हर पाप का विनाश होता है, मोक्ष की प्राप्ति होती है अतः भागीरथी एक पुण्य सलीला नदी है, देव नदी है। गंगा के पूर्व यात्रा का प्रवाहपथ पद्मा के नाम से प्रसिद्ध है जो बंगाल की वृहत्तम नदी है। इसके बावजूद भी यह पाप प्रवाहिनी तथा कीर्तिनाशा कहलाती है। कवि कृतिवास का कहना है कि पद्मा के जल के स्पर्श से मुक्ति नहीं मिल सकती क्योंकि पद्मा का जल अपवित्र है। पद्मावती के प्रति हिन्दु समाज की अश्रद्धा के कारण को स्पष्ट करते हुए कवि ने कहा कि स्वर्ग से मृत्युलोक में अवतरण करने के बाद गंगा देवी को पद्मा का नाम देकर पद्म नामक जैन मुनि पूर्व दिशा को ले गये। गंगा देवी अल्प समय में ही अपनी गलती को जानकर भागीरथ का अनुसरण करके दक्षिणवाहिनी हो गई तब पद्मावती को अभिशाप दिया कि पद्मा के जल से किसी को भी मुक्ति नहीं मिल सकती। यह पद इस प्रकार है—

कान्डोरेर प्रति गंगा मुक्ति पद दिया ।
 गौड़ेर निकट गंगा मिलिल आसिया ।।
 पद्म नामे एक मुनि पूर्व मुखे जाय ।
 भगीरथ बलि गंगा पश्चात गोड़ाय ।।
 पूर्व दिके जाईते आमार नाहि पथ ।।
 पद्ममुनि लये गेल नाम पद्मावती ।
 भगीरथ संगेते चलिल भगीरथी ।।
 शापवाणी सुरघुनी दिलेन पद्मारे ।
 मुक्ति केह तब नीरे पावे ना संसारे ।।

कृतिवास ने जिन पद्म मुनि का उल्लेख किया है वह हिन्दुओं के किसी देवता या ऋषि के लिये नहीं मिलता। लेकिन जैन तीर्थकरों में पद्म प्रभु छोटे तीर्थकर है जिनका जन्म कौशम्बी में हुआ था और जिनका चिन्ह है लाल कमल। पद्मप्रभु बंगला देश में प्राचीन काल से ही अप्रसिद्ध नहीं थे। उनकी कई मूर्तियाँ जो इस क्षेत्र के विभिन्न जगहों से निकली हैं उनमें लाल कमल का चिन्ह अंकित है। एक दूसरी मान्यता के अनुसार भगवान पार्श्वनाथ की शासन देवी पद्मावती को बंगाल में मनसा के नाम से भी जाना जाता है। मनसा का नाम पद्मावती कैसे पड़ा इसका वर्णन पद्मपुराण में दिया हुआ है। जिसके अनुसार कमल के वन में उत्पत्ति के कारण नाम हुआ पद्मावती। मनसा नाम हुआ नागराज से। अर्थात् शिव कन्या मनसा का जन्म कमल के वन में हुआ था इसलिये मनसा पूर्व बंगाल में पद्मा के नाम से प्रसिद्ध थी। पहले ये सर्प देवी अनार्य लोगों द्वारा ही पूजी जाती थी और संभवतः उन्हीं के नाम से भागीरथी के पूर्व प्रभाव के पथ का नाम भी पद्मावती हुआ। धीरे-धीरे हिन्दू समाज ने भी उन्हें अपनाया। लेकिन फिर भी पद्मावती या पद्मानदी ब्राह्मणों की श्रद्धा-भक्ति अर्जन नहीं कर पायी और इसीलिए पद्मानदी को कीर्तिनाशा नदी माना गया है। जिस प्रकार सम्मैत शिखर का नाम पार्श्वनाथ पहाड़ भगवान पार्श्वनाथ के नाम से पड़ा। वर्द्धमान, वीरभूमि आदि स्थानों के नाम भगवान महावीर की स्मृति में पड़े। वैसे ही पार्श्वनाथ की शासन देवी पद्मावती बंगला देश में प्रसिद्धि के उच्च शिखर पर अवस्थित थी। इसीकारण यहाँ के आदिवासियों ने नदी का नाम उन्हीं के नाम पर पद्मा रखा। बंगाल के इतिहास के प्रो० श्री चितरंजन पाल ने अपने शोध लेख में इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

पाश्चात्य विद्वानों के विवरणों और जैन ग्रन्थों से हमें पता चलता है कि छोटा नागपुर के पार्श्वनाथ पर्वत के समीप के क्षेत्र में भगवान महावीर से पूर्व ही सराक जाति के लोगों ने यहाँ अपना निवास स्थापित किया था। भगवान महावीर ने अपनी साधना के छः वर्ष इसी क्षेत्र में बिताये थे। भगवती सूत्र में वर्णन है कि उस समय पार्श्वनाथ सम्प्रदाय के साधु-साध्वियों का भी यह विचरण क्षेत्र था। अतः यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि महावीर से पूर्व भी यहाँ पार्श्व परम्परा प्रचलित थी।

श्री श्यामाचरण मुखोपाध्याय ने लिखा है कि “जैन सूत्र ग्रन्थों (आचारंग सूत्र, भगवती सूत्र इत्यादि) से ऐसा भी प्रमाण मिलता है कि महावीर से पहले भी जैन मुनि या सन्यासीगण धर्मप्रचार के उद्देश्य को लेकर या फिर किसी और कारण से इन अंचलों में आये थे। ऐसा लगता है कि ये सभी मुनि और सन्यासीगण महावीर के पूर्ववर्ती तीर्थंकर पार्श्वनाथ के अनुगामी रहे हों। अगर यह अनुमान सत्य हो, तो फिर यह स्वीकार किया जा सकता है कि पार्श्वनाथ ने बर्द्धमान महावीर से पहले ही पश्चिम बंगाल और बिहार में धर्मप्रचार किया था।”

(बंगाल सीमांत पर बसा सराक सम्प्रदाय)

भगवान महावीर जब साधना के लिये इस क्षेत्र में आये थे और यहाँ पर उनके ऊपर अनेकों उपसर्ग हुए थे तब जयन्ती और सोमा नाम की पार्श्वनाथ की अनुयायी साध्वियों द्वारा उनकी रक्षा की गयी। आचारंग सूत्र के अनुसार भगवान महावीर ने राढ़ क्षेत्र की ऊसर भूमि में अनेक विपत्तियों का सामना किया था। भारतीय इतिहास के जाने-माने विद्वान डॉ० आर. सी. मजूमदार ने लिखा है कि—

The first recorded contact of Bengal with Jainism was marred by incidents which reflect great discredit on her people. We learn from the Acaranga Sutra that when Mahavira wandered as a naked mendicant in Ladha (i.e., Radha or western part of undivided Bengal) through its two divisions known as Vajjabhumi and Subbhabhumi, he was attacked by the people who even went to the length of setting dogs upon him.

(R.C. Majumdar)

आचारंग सूत्र के नवें अध्ययन के तृतीय उद्देशक में लिखा है—

अह दुच्चरं लाढमचारी वज्जभूमियं सुब्भभूमियं पंतं ।

सिज्जं सेविंसु, आसणगणि चेब पंताणि ।।२

अर्थात् जहाँ विचरना बहुत ही कठिन है ऐसे लाढ़ देश की वज्र भूमि और शुभ्र भूमि इन दोनों प्रदेशों में भगवान विचरे थे। वहाँ अनेक उपद्रवों से युक्त सूने घर आदि में भगवान ने विश्राम लिया था।

लाढेहिं तस्सुवसग्गा बहवे जाणवया लुसिंसु,

अह लूह दैसिए भत्ते, कुक्कुरा तत्थहिंसिंसुणि—वइंसु ।।३

लाढ़ देश में विचरते समय भगवान को बहुत उपसर्ग हुए थे। वहाँ के निवासी लोग भगवान को मारते थे, कुत्ते उन्हें काटते थे और उन पर टूट पड़ते थे।

णागो संगाम सीसे व पारए तत्थ से महावीरे

एवं वि तत्थ लाढेहिं अलद्धपुव्वो वि एगया गामो ।।८

जैसे हाथी संग्राम के अग्रभाग में जाकर शत्रुओं के प्रहार की भी परवाह न करता हुआ शत्रु सेना को जीतकर उसको पारकर जाता है इसी तरह भगवान महावीर स्वामी ने भी लाढ़ देश के परिग्रहों को जीतकर उस देश को पार किया था। कभी ठहरने के लिये ग्राम भी नहीं मिलता था तब वे जंगल में वृक्षादि के नीचे ठहर जाते थे।

आजीवक सम्प्रदाय के गोशालक ने भगवान महावीर के साथ इस प्रदेश में विचरण किया था। जिसका उल्लेख भगवती सूत्र में हमें मिलता है।

भगवान महावीर ने अपनी तपस्या और साधना के लिये जिस क्षेत्र का वरण किया था उस बंग भूमि के अंचल में उनके जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएं घटी थी। उन्होंने इस अंचल में साधना की। यहाँ के उपसर्गों को जीतकर इस क्षेत्र को अपनी अपरिसीम करुणा से अभिषिक्त किया था और यहाँ के आदिवासी लोक मानस को परिवर्तित करने में सफल हुए थे। यहीं उनका दर्शन विकसित हुआ। आचार में अहिंसा और विचार में अनेकान्त। आत्मा की स्वतन्त्रता के दर्शन का उन्होंने जो प्रतिपादन किया और जिसके वे जीवन्त प्रतीक बने उसका प्रभाव सम्पूर्ण पूर्वी भारत में ही नहीं रहा बल्कि यहाँ से पूरे देश और विदेश में भी फैला।

बंगाल के पुरुलिया जिले में पंचकोट पहाड़ी पर ३०० फुट पर ३००० वर्ष पुरानी एक गुफा है जिसमें तीर्थंकर मूर्ति अंकित है। इसके अलावा २५०० से २००० वर्ष पुरानी मूर्तियाँ और मंदिर के भग्नावेश यत्र-तत्र पड़े हैं। तेलकूपी के भैरवनाथ और पकवीड़ा के महाकाल भैरवनाथ दोनों ही तीर्थंकर महावीर की मूर्तियाँ हैं जो खुले आकाश के नीचे रखी हुई हैं। जिस पूर्वी भारत से सारे विश्व में अहिंसा, दर्शन की ज्योति प्रज्वलित हुई वहीं पर आज अहिंसा के इन महापुरुषों की मूर्तियों के सामने हिंसक बलि देते हैं। इस पूरे अंचल में बिखरे पाषाण शिल्प के प्राचीन निर्देशन एक प्राचीन इतिहास के प्रामाणिक दस्तावेज हैं जो पूर्वी भारत की प्राचीन संस्कृति का किस प्रकार पतन हुआ उसकी कहानी सुनाते हैं।

ढाई हजार वर्ष प्राचीन पाढ़ा के जैन मंदिर के पाषाण और शिल्पकला के वैशिष्ट्य देखने से यह पता चलता है कि यहाँ उस समय निर्ग्रन्थ संस्कृति अपने उत्कर्ष में थी।

वर्द्धमान जिले का नामकरण तीर्थंकर महावीर के नाम से सम्बन्धित है। इस जिले के दामोदर तीरवर्ती अंचल किस प्रकार जैन धर्म से प्रभावित हुए थे उसके सैकड़ों प्रमाण उपलब्ध हैं। वर्द्धमान जिले के बेगुनिया, शिवपुर, काजोड़ा, नन्दी, जामुरिया, रक्षितपुर, बसुधा, माजूरिया, खाण्डारी, मानकर, कसवा, सुयाता, एड़ाल, सर, आदरा, परशूड़ा, नवावहाट, रायना, खण्डघोष, बोंयाई, श्यामनगर, भारूचा, मण्डलजाना इत्यादि अनेकों गाँवों में जैन सम्प्रदाय के विभिन्न उत्सव आज भी अनुष्ठित होते हैं। ये सब क्षेत्र दामोदर नदी के दोनों तटों पर अवस्थित हैं। जी टी रोड़ के पास ही बराकर नदी के तट पर आसनसोल महकमा के बेगुनिया में चार प्राचीन मंदिर हैं। ऐतिहासकार वेगलर के अनुसार ये मन्दिर लगभग पन्द्रह सौ वर्ष प्राचीन हैं। बहुत सी पत्थर की मूर्तियाँ भी यहाँ मिली हैं जो पुरुलिया के तेलकूपी के जैन मन्दिरों की मूर्तियों से मिलती

जुलती हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि बेगुनिया किसी समय जैन धर्म का महत्वपूर्ण केन्द्र था। किन्तु बाद में वहाँ की धर्मीय इमारतों और मूर्तियों को शैव और ब्राह्मण धर्म ने ग्रास कर लिया। इस विषय में युधिष्ठिर माँझी ने लिखा है—

“पाकविरा के मन्दिर धर्मान्ध मनुष्यों के काले हाथों से नहीं बच सके। किन्तु बराकर के मन्दिर शिवलिंग का कवच धारण कर अक्षत रह सके हैं। बराकर मन्दिर के गर्भ में शिवलिंग स्थापित कर देने के कारण अब इन्हें शिव मन्दिर कहकर ही प्रचार किया जाता है। पश्चिम बंग सरकार के टूरिस्ट ब्यूरो के विज्ञापन में लिखा गया है— माइथन तुम्हें पुकार रहा है। यात्रा करते समय बराकर के कोलाहलहीन शान्तिधाम, कल्याणेश्वरी और विख्यात शिव मन्दिर आर्त-हृदयों की क्लान्ति को समाप्त कर देगा।

किन्तु बराकर मन्दिरों को विख्यात शिव मन्दिर कहकर प्रचार करने से न केवल सत्य को ही झुठलाया जाता है अपितु, विदेशी भ्रमणकारियों को विभ्रान्त भी बनाया जाता है।

बंगाल सीमान्त प्रदेशों में विशेषकर जो बिहार और उड़ीसा से संलग्न है वहाँ पर जैन धर्म की जड़े बहुत ही प्राचीन और गहरी हैं जिनके साक्ष्य निदर्शन के रूप में आज भी उस क्षेत्र में सर्वत्र विखरे पड़े हैं। भारत की आजादी के बाद सबसे ज्यादा अगर कोई पुरातत्व सामग्री की अवहेलना हुई है तो वह जैन पुरातत्व ही है। विदेशों में हम देखते हैं कि एक छोटी सी छोटी प्राचीन वस्तु को भी संरक्षित करके रखते हैं और उसकी प्राचीनता पर गर्व महसूस करते हैं। इसके विपरीत हमारी सरकार और पुरातत्व विभाग प्राचीन निदर्शनों का संरक्षण तो दूर उनको नष्ट करने के प्रयास में सहयोगी अवश्य बन रहे हैं। उनमें प्राचीन निदर्शनों का संरक्षण करने की इच्छाशक्ति का अभाव स्पष्ट दिखाई देता है। एकांगी विचारधारा के पोषक इस विभाग की अनदेखी के कारण सैकड़ों निदर्शन अभी तक नष्ट हो गये हैं और सैकड़ों नष्ट होने के कगार में हैं।

स्वतंत्रता के बाद दामोदर नदी पर जो बांध बनाये गये उसमें सैकड़ों निदर्शन नष्ट हो चुके हैं। सन् १९६९ ई० में पाँचेत डैम के निर्माण के समय २० प्राचीन मंदिर नष्ट हो गये। १९८५ ई० में सुवर्ण रेखा नदी पर चांदिल डैम का निर्माण हुआ और २६ मंदिर जल के गर्भ में समा गये। अकेले चांदिल डैम के अन्तर्गत १०० गाँव डूब गये जिनमें जैन राजा विक्रमादित्य की जन्मस्थली भी थी।

पाँचेत डैम के विपरीत दिशा में माइथन डैम का निर्माण किया गया जिसमें अनेक महत्वपूर्ण मंदिर विलीन हो गये। बराकर नदी पर बना यह तिलाया डैम हजारीबाग तक गया है जो एक प्राचीन तीर्थयात्रा पथ था। पूर्व में पावापुरी से संथाल परगना तथा पश्चिम में शाहबाद तक। ये पथ आसनसोल में जी.टी. रोड से मिलकर सिंहभूम होता हुआ दक्षिण उड़ीसा तक गया है। तिलाया डैम के अन्तर्गत अनगिनत जैन निदर्शन पानी में समा गये जिसका आज कोई लेखा-जोखा नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दामोदर वैली कॉरपोरेशन के अन्तर्गत सात बाँध जिनमें तिलाया डैम, कोनार डैम, पत्थराटु डैम, माइथन डैम, लालपानियां डैम, पाचेत डैम, तेनूघाट डैम, और दुर्गापुर बांध के निर्माण में हजारों-हजारों गाँव जलमग्न हो गये। सिर्फ इच्छा डैम के निर्माण में सत्तासी गाँव जलमग्न हुए जो जैन धर्म के प्रमुख केन्द्र स्थल थे।

इन डैमों के अलावा कोयला खदानों में से कोयला निकालने के लिये अनेक वर्षों तक आग जलने के कारण दामोदर के निचले क्षेत्र में बाढ़ का प्रकोप बढ़ने के कारण उसका प्रभाव बोकारो और धनबाद के जैन निदर्शनों पर तो पड़ा ही साथ साथ गोवाई, कसाई, कंसावती और सुवर्णरेखा नदियां जो मानभूम सराईकेला खरसावन, पुरुलिया, और सिंहभूम जिलों से होकर बहती है वहाँ के निदर्शनों पर भी पड़ा।

वर्तमान में दामोदर नदी घाटी के ऊँचे घाट उत्तरी करनपुर घाटी पर निर्मित बांध सुपर थरमल पावर प्रोजेक्ट के कारण सत्तर कोयले की खानों के साथ साथ २०० गाँव को जो प्राग्यऐतिहासिक काल और मौर्यकाल की पाषाण कला के श्रमण संस्कृति प्रभावी क्षेत्र है, अभी नष्ट होने की कगार पर है।

१९५७ में वहाँ के स्थानीय लोगों में दामोदर में बाढ़ की आशंका को देखकर archeological research of India Kolkata को सूचित किया और मन्दिरों को स्थानान्तरित करने को कहा लेकिन ASI की निष्क्रियता के कारण मन्दिर डूब गये। साक्ष्य के लिए रह गये हमारे पास १८७२-७३ में बेगलर के लिये चित्र और १९२९ में बोस के लिये चित्र। ASI के D.G. ने जब वहाँ का भ्रमण किया तो उनके साथ Dr. Mrs. Debala Mitra भी गयी। वहाँ उन्होंने स्थानीय लोगों से भैरव स्थान के मन्दिरों के विषय में जानकारी ली और उनके विषय में लिखा। सन् १९६० की फोटो से यह पता चलता है कि उस समय जो मन्दिर पानी के किनारे थे वह अच्छी हालत में थे और उन्हें स्थान्तरित किया जा सकता था। लेकिन अधिकारियों की दूरदर्शिता और निकम्मेपन के कारण यह नहीं किया गया। फलस्वरूप १९६२ के चित्रों से यह पता चलता है कि ये मन्दिर भी पानी में चले गये। चालीस साल बाद चांदिल डैम के निर्माण के समय भी ऐसा ही हुआ।

क्या कारण था कि Archeological Survey of India, Kolkata ने इन निदर्शनों को सुरक्षित रखने की पहल नहीं की। क्यों पश्चिम बंगाल की सरकार ने इसकी अनदेखी की। भारत की संस्कृति की एक मूल्यवान धरोहर को इस तरह खुलेआम नष्ट हो जाने क्यों दिया गया? सिर्फ कुछ ही मूर्तियों को दामोदर के पानी से निकाला गया बाकी सब पानी में बह गयी। इससे कोई सबक क्यों नहीं लिया गया।

इसी प्रकार देउलभिरा, दुलमी, देवली, गुहियापाल, इच्छागढ़, पाटकू, पवनपुर, पकवीरा, पटमदा, सुइसा, रालीबेरा, तुइसामा आदि अनेक क्षेत्रों में जैन निदर्शन विखरे पड़े हुए हैं। जिनमें से अनेक जल में समा गये हैं या फिर गायब कर दिये गये। आज भी अगर वहाँ जाए तो गाँव

के बीच में, चौराहों में, पेड़ों के नीचे, खुले रास्ते पर, घने जंगलों के बीच जैन निदर्शन अवहेलित पड़े देखने को मिलेंगे। एक-एक स्थान पर तो भग्न और जीर्ण जैन मंदिरों की ईंटों से गाँव के मकानों को निर्मित किया गया है। पूरे गाँव के मकानों में मंदिरों की ईंटें व्यवहार में लायी गयी है।

ये पुरातात्विक अवशेष गवाह है हमारे पूर्वजों की अनुपम शिल्प निर्माण दक्षता के, जिन्होंने अपनी निपुणता से गढ़ा था उन सर्वज्ञ महापुरुषों की वीतरागी मुद्रा को, जीवन्त कर दिया था अध्यात्मिक पराकाष्ठा के इन योगियों को। इन अमूल्य निदर्शनों को आज प्रकृति ने नहीं डंसा है, डंसा है उन्हीं मनुष्यों के उत्तराधिकारियों ने अपने निष्ठुर क्रिया कलापों से, विद्वेष की भावना से और डंसा है परस्पर अन्तःकलह ने। नित्य नये नये मंदिर और नई नई मूर्तियों का निर्माण हो रहा है। क्या उनका भविष्य भी इसी प्रकार नहीं होगा? १६वीं, १७वीं, और १८वीं सदी की इमारते वर्ल्ड हेरिटेज के अन्तर्गत संरक्षित है तो यह तो अत्यन्त पुरानी संपदा है। अभी भी समय है, हमें चेतना होगा ताकि बची हुई विरासत को सहेज सके। जिन तीर्थंकरों की पूजा, वंदना और अर्चना हम करते हैं जिनके उपदेशों को हम सुनते हैं, जिनके दिखाये हुए पथ पर चलना चाहते हैं उन अहिंसा के पुजारियों के समक्ष दी जा रही हिंसक बलि भी हमारे मन मस्तिष्क के कपाट नहीं खोल पा रही है क्या कारण है। यह बहुत ज्वलन्त प्रश्न है जिसका जबाब हमें अपने इतिहास में से ही खोजना पड़ेगा।

आज जो समृद्धवान है और जो प्राचीन समय में समृद्धवान थे उनकी मानसिकता में भी गहरा अन्तर स्पष्ट दिखायी पड़ता है। यह सर्वविदित है कि बंगाल और बिहार प्राचीन समय से अत्यन्त समृद्धशाली क्षेत्र थे जिसका प्रमुख कारण श्रमण संस्कृति का प्रभाव था। जैनेत्तर ग्रन्थों में इन क्षेत्रों में ब्राह्मणों का जाना वर्जित था। ऋग्वेद में भी इन क्षेत्रों की समृद्धि का उल्लेख मिलता है। यहाँ पर व्रात्य क्षत्रियों का राज्य था। श्रमण संस्कृति का प्रभुत्व था, जैनाचार्यों द्वारा लोगों को विभिन्न प्रकार की कला की शिक्षा देकर दक्ष बनाया जाता था। उस समय एक भी गाँव या शहर ऐसा नहीं था जहाँ साधारण जनता के अंग में अलंकार न हो। जो श्रमण संस्कृति की समृद्धि का महत्वपूर्ण परिचायक था। बड़े-बड़े राजाओं, शासकों, श्रेष्ठियों और साधारण लोगों के जीवन चरित्र के वर्णन में इसकी झलक दिखाई पड़ती है। एक उच्चकोटि का श्रावक भी अपने कार्यकलापों से अपने यहाँ रोजगार करने वाले लोगों की सुख-सुविधा और जीवन यापन का ध्यान रखता था तथा उनका स्तर ऊंचा उठाने के लिये प्रयत्नशील रहता था। यही वास्तविक कारण था यहाँ की समृद्धि का। बाद में यही समृद्धि बाहरी जातियों के आकर्षण का केन्द्र बनी एवं यहाँ आगमन का जरिया बनी। ऋग्वेद में वर्णन है कि यहाँ की सम्पदा और समृद्धि को हड़पने के लिये किस तरह इस क्षेत्र में आक्रमण किया गया और जब सहजता से नहीं जीत सके तो जीतने के लिये दूसरे उपाय किये गये और धोखे से आक्रमण कर विध्वंस किया।

इस अंचल में धातु की प्रचुरता होने के कारण स्वाभाविक रूप से यहाँ के निवासी उस

समय के भारतवर्ष के अन्य अंचलों के निवासियों की तुलना में आर्थिक रूप से कहीं अधिक सम्पन्न थे।

बहुत ही अजीब बात है कि इतिहासकार जानते हैं और कहते भी है, लिखते भी है कि यहाँ इस क्षेत्र में तेइसवें तीर्थकर पार्श्वनाथ आये थे, वर्द्धमान महावीर आये थे लेकिन उनके पास जो इतिहास है वह सातवीं शताब्दी से है। छः सौ ई० पू० से सातवीं सदी तक के ग्यारह सौ साल के इतिहास का किस प्रकार दोहन हुआ है इसका पता इन क्षेत्रों में जाने से वहाँ के लोगों की परंपराओं, रीति-रिवाजों को जानने से सहज ही अनुमानित किया जा सकता है। सातवीं शताब्दी ही पतन की शुरुआत थी शायद इसीलिए सप्तम शताब्दी से क्रमबद्ध इतिहास हमारे सामने है।

सराक जाति : बंगाल में जैन धर्म के जीवन्त प्रमाण के रूप में अति प्राचीन काल से आज तक एक ऐसी जाति निवास करती है जिसे हम सराक के नाम से जानते हैं।

यह मान्यता है कि किसी भी जाति के कुल और गोत्र के नाम उनके पूर्वजों के नाम पर परम्परा से चले आते हैं। इन सराक जाति के लोगों के गोत्र तीर्थकरों के नाम पर है धर्मदेव, अनन्तदेव, आदिदेव तथा ऋषभदेव आदि। जिनमें ऋषभदेव प्रमुख है। अतः यह माना जा सकता है कि सराकों के पूर्वज ऋषभदेव या उनके निकट के कोई व्यक्ति थे। जिनसे उनका रक्त संबंध था। किसी भी अनुष्ठान में ये सराक जाति अपने आदि पुरुष का नाम गोत्र पिता के रूप में स्मरण करते हैं। यह एक जीवन्त प्रमाण है जो लिखित इतिहास से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है।

श्रावक से सराक :

श्रावक शब्द का अपभ्रंश रूप है सराक। भारत के पूर्वांचल की साधारण जनता में 'व' का उच्चारण नहीं होता है अतः श्रावक की जगह पर 'व' का उच्चारण नहीं करने पर श्राक हो गया जो धीरे-धीरे सराक बन गया है। श्रावक का संस्कृत अर्थ है श्रमणकारी। पाश्चात्य विद्वानों ने ही सर्वप्रथम इस अर्थ को प्रचलित किया। "The word Sarak is doubtless derived from Sravaka, The Sanskrit word 'hearer'. Amongst the Jain, the term is used to indicate the laymen or persons. Who engaged in secular pursuits, as distinguished from the Yatis, monks or ascetics."

गेटे ने अपनी census Report में लिखा है— "यह सराक शब्द निस्सन्देह श्रावक शब्द से उद्भूत हुआ है जिसका संस्कृत अर्थ है श्रवणकारी। जैनों के मध्य उन गृहस्थों के लिए प्रयुक्त हुआ है जो कि लौकिक व्यवसाय करते हैं एवं यति और साधुओं से भिन्न हैं।"

Mr. L.S.S. O Maly I.C.S के अनुसार — "The name Sarawak, Serak or Sarak is clearly a Corruption of Srawaka the Sanskrit word for a hearer, Which was used by the Jains for lay brethern," (From Bengal District gazetter Vol XX Singbhoom Calcutta 1910 pg-25).

The word *srava rja (rga)* denotes a tribal people who still live in considerable

numbers in the western districts of Bengal. They are known as Srak or Sarak. The word Srak or Sravaka must have originated from the Sanskrit word *sravaka* meaning a householder following the path of the *Jinas*. An analogous title widely in use is 'Saraogi'. In 1891, Risley published a book entitled Tribes and Castes of Bengal, wherein he referred to the Sraks or Saraks. Although their ancestors were full Jainas, these people, who are for all practical purposes Hindus now, worshipping Hindu deities still prefix their invocation by the incantation 'ahimsa paramo dharma', are vegetarians in food habits and believe and practise non-violence.

- J.J. July 1970, Sudin Dey

श्रावक शब्द का व्युत्पत्तिगण अर्थ निम्नप्रकार है:-

श्रा	-	श्रद्धावान
व	-	विवेकवान
क	-	क्रियावान

अर्थात् श्रद्धा पूर्वक विवेकवान होकर जो व्यक्ति अपने कर्तव्यों का अनुपालन करते हैं अर्थात् जो लोग तीर्थकरों के उपदेशों को मन, वचन, काया के द्वारा अनुपालन करते हैं वो ही श्रावक संघ के सदस्य या श्रावक कहलाते थे। दूसरे शब्द में कहे तो सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चरित्र का पालन करने वाले ही श्रावक कहलाते हैं। और यहीं श्रावक पूर्वाचल में सराक के रूप में अपनी पहचान बनाए हुए है। एक जैन सम्मेलन में किसी वक्ता ने इनके विषय में कहा था कि “ यदि वर्तमान जैन संघ जिनेश्वर की नूतन प्रति है तो सराक उसकी प्राचीन प्रतिमा का अवशेष है। यदि जैन रूप पर्वत की खुदाई करेंगे तो सराक उस खुदाई की उपलब्धि होंगे।” आदि संस्कृति के प्रणेता भगवान ऋषभदेव थे। जिनकी मान्यता वैदिक ग्रन्थों में भी है तथा वे सारे मानव समाज के आदि पुरुष माने गये हैं। उनको सराक जाति अपने गोत्र पिता के रूप में वहन करती आ रही है। अतः यदि हमें अपने प्राचीन संस्कृति के इतिहास को जानना है तो सराक जाति के इतिहास का परिचय पाना होगा जो हमें आदिनाथ ऋषभदेव तक पहुँचाता है।

सराकों से परिचय :

सन् १८६४-६५ में ले० कर्नल डाल्टन ने मानभूम जिला परिभ्रमण की टूर डायरी लिखते समय एक ऐसी जाति का उल्लेख किया जिसने उन्हें विशेष रूप से प्रभावित किया था। उनके सम्बन्ध में वे लिखते हैं- १८६३ में जब कि मैं पुरुलिया से १२ मील दूर झापरा नामक स्थान पर गया तो वहाँ के कुछ अधिवासी मुझसे मिलने आए। मुझे उनकी मुखाकृति बुद्धिदीप्त और बड़ी ही शालीन लगी। उन्होंने स्वयं को सराक बताते हुए गर्व से कहा कि किसी घृणित कार्य के लिए उनमें से कोई भी कोर्ट में अभियुक्त बनकर नहीं गया है। वास्तव में किसी को आघात पहुँचाने या किसी भी हत्या के प्रति उनके मन में अत्यन्त घृणा थी। वे पार्श्वनाथ के उपासक थे और सूर्योदय के पूर्व कुछ नहीं खाते थे। आगे वे फिर लिखते हैं- यद्यपि छोटा नागपुर के स्थान-स्थान

पर उनकी बस्तियाँ पायी जाती हैं फिर भी उनके पूर्वज वहाँ के आदिवासी नहीं थे। उनका आदि निवास स्थान था पाँचेत। उन लोगों का देहवर्ण, गठन और केश विन्यास मुण्डा और कोल जाति के लोगों से भिन्न था। वे बड़े ही उद्योगी थे। जीविकोपार्जन के लिए उन्होंने कृषि और वाणिज्य दोनों को ही ग्रहण किया था। इनके स्थापत्य सम्बन्धी कार्यों के विषय में लिखते समय डाल्टन ने लिखा-मानभूम जिले में मैंने दो विभिन्न प्रकार के स्थापत्यों के ध्वंसावशेष देखे। उनमें जो प्राचीन हैं उनके विषय में कहा जाता है— और इस विषय में कोई सन्देह भी नहीं है कि वे उन प्रथम आर्य औपनिवेशियों द्वारा निर्मित थे जिन्हें सेराप, सेराव, सेराक या श्रावक कहा जाता है। यहाँ तक कि भूमिज जिन्होंने कि बहुत पहले से ही उन अंचलों में बस्तियाँ स्थापित की थी, वे भी कहते हैं कि उनके पूर्वजों ने (जो कि इस प्रकार के स्थापत्य निर्माण के कौशल से अनभिज्ञ थे) यहाँ बस्ती स्थापित करने के लिए जंगल साफ करते समय इस प्राचीन स्थापत्य को देखा था। साथ ही यह भी प्रवाद है कि सिंहभूम के पूर्वांचल में भी सराकों ने ही प्रथम उपनिवेश स्थापित किया था। लगता है सराकों ने अपनी बस्तियाँ नदियों के किनारे-किनारे स्थापित की थी। शायद इसीलिए उनके मन्दिरों के ध्वंसावशेष दामोदर, कंसाई एवं अन्य नदियों के किनारे ही पाए जाते हैं। कंसाई नदी की तटभूमि पूराकीर्ति का एक समृद्ध क्षेत्र है।

आगे उन्होंने लिखा है मैंने वहाँ की मूर्तियाँ देखी हैं एवं इस विषय में मैं निस्सन्देह भी हूँ कि ये सब पशु लञ्छन सह जैन तीर्थकरों की ही मूर्तियाँ हैं। मैंने जितने भी मन्दिरों का विवरण दिया है वे सब सम्भवतः वीर या महावीर जिस पथ से गुजरे थे उसी पथ के किनारे उनके पदचिन्हों को अनुसरण कर उन लोगों द्वारा निर्मित हैं जिन्हें कि उन्होंने अपना अनुयायी बताया था। ये सभी मन्दिर समय या सम्मत् शिखर की परिधि में ही है। इस सम्मत् शिखर के विषय में कहा जाता है कि वीर निर्वाण के २५० वर्ष पूर्व जिन पार्श्व या पार्श्वनाथ ने सांसारिक बन्धनों को क्षय कर इसी स्थान पर निर्वाण प्राप्त किया था। अतः लगता है जंगलों के मध्य, नदियों के किनारे-किनारे महावीर के आविर्भाव के भी बहुत पहले जिन्होंने यहाँ बस्तियाँ स्थापित की थीं, जिनके मध्य महावीर ने धर्म का प्रचार किया था वे जैन धर्म के तत्वों से अपरिचित नहीं थे। भूमिज, हो या लुरका कोलों के मध्य प्रचलित प्रवादानुसार भी सराकों ने ही इस अंचल को सर्वप्रथम अपने अधिकार में लिया था।

पाश्चात्य जगत के विद्वानों जिनमें कर्नल डाल्टन, वैलेनटाइन वॉल, मिस्टर जी. कूपलैण्ड, मिस्टर हरबर्ट रिसले आदि प्रमुख हैं उन्होंने सराक जाति का परिचय हमें दिया है। यह गम्भीर चिन्तन का विषय है कि जिस जाति का चरित्र इतना उन्नत है, जिनकी एक विशिष्ट संस्कृति है उनके विषय में आज तक हम अज्ञान क्यों बने हुए हैं। बहुत कम लोग ही जानते हैं कि प्राचीन सभ्यता के धारक और वाहक सराक जाति थी और इतना ही नहीं ब्राह्मण धर्म के भयंकर उत्पीड़न से स्वयं को बचाने के लिये इनको अपना धर्म परिवर्तन करना पड़ा। हीन आजीविका में नियुक्त होना पड़ा। इतना होने पर भी इन लोगों ने अपना निजी वैशिष्ट्य पूर्णतया नष्ट नहीं किया।

इतिहासकार नीहार रंजन राय ने लिखा है— “जैन पुराण के ऐतिहासिकत्व को स्वीकार करने पर कहना होगा मानभूम, सिंहभूम, वीरभूम और वर्द्धमान इन चारों स्थानों के नाम जैन तीर्थंकर महावीर या वर्द्धमान के साथ जुड़े हुए हैं और आज भी ये सराक बहुलक्षेत्र है।”

सराक जाति के आचार्य श्री सुयश मुनि जी ने लिखा है— “पूर्व भारत स्थित सराक गाँव व घरों में दीपावली व भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण कल्याणक महोत्सव को अति धूमधाम के साथ मनाया जाता है। सच कहा जाय तो अनभिज्ञ सराक आज भी नहीं जानता है कि ये आग प्रज्वलित कर इस तरह का धूमधाम क्यों मनाया करता है।”

कल्पसूत्र में भगवान श्री महावीर का निर्वाण महोत्सव का विशेष उल्लेख पाया जाता है। इस उल्लेख में दीपावली की रात्रि से पूर्व भगवान महावीर पावापुरी नगरी में दो दिन धर्म देशना देकर मोक्षपद प्राप्त करते हैं। उस समय वहाँ उपस्थित देव-देवी नर-नारी मिलकर शोक सहित भगवान का निर्वाण महोत्सव मनाते हैं। आज जहाँ जल मंदिर स्थित है, वहाँ पर प्रभु की पार्थिव शरीर को अग्निदाह देकर वहाँ उपस्थित भक्तजन मांगलिक रूप में प्रभु महावीर की चिता की राख अपने साथ ले जाते हैं। उसका अनुसरण करते हुए जन साधारण भी वहाँ से अवशेष राख मिट्टी आदि लेकर अपने घर जाते हैं और मांगलिक रूप में प्रयोग करते हैं। इसी क्रिया का हुबहु अनुसरण आज २६०० साल बीतने के बाद भी सराक लोग करते हैं।

जैसे दीपावली की रात्रि घर के सभी पुरुष सदस्य पाट लकड़ी का मशाल बनाकर घर के मुख्य स्थल में जलाये हुए दीपक में उसे जलाकर गाँव के बाहर एक निर्दिष्ट स्थान में पहुँचाते हैं तथा वहाँ सजाये हुए लकड़ी की चिता जलाते हैं। प्रदक्षिणा देते हैं। अन्त में अधजले हुए अवशेष को अपने साथ घर लाकर मुख्य दरवाजे, अनाज कोठी आदि-आदि स्थानों पर शुभ प्रतीक के रूप में रखते हैं।

यह क्रिया भगवान महावीर का निर्वाण महोत्सव ही है क्योंकि इसका मुख्य प्रमाण मशाल जुलुस में विशेष नारे के रूप में ‘इंजौइ पिंजोइ’ शब्द का प्रयोग किया जाना है।

(सराक शिखर)

सराक जाति इस देश में लौह शिल्प की कर्ता-धर्ता थी। अजय नदी के दोनों तरफ भग्नावस्था में पड़े हुए लौह अयस्क गलाने की भट्टियाँ इनकी लौह शिल्प दक्षता का प्रमाण देती है। भगवान महावीर के शिष्य सुधर्मा स्वामी, भद्रबाहु एवं तीसरे कुमानसेन ये लौहाचार्य अर्थात् लौहशिल्प के पण्डित थे।

इन्होंने सराक जाति को लौह शिल्प में दक्ष किया। भगवान ऋषभदेव तथा अन्य तीर्थंकरों के बाद प्रजा को शिल्प कला में दक्ष करने का कार्य जैनाचार्यों के विशिष्ट ज्ञान और पांडित्य को है। सराक जाति शिल्पकार थी। इनको शिल्प में प्रवीणता देने का कार्य जैन आचार्यों का था। नालन्दा विश्व विद्यालय के कार्य कलापों को देखने से इस बात की पुष्टि होती है कि वहाँ धातु प्रयोग की कला का अध्ययन जैनाचार्यों की देखरेख में होता था क्योंकि जैनाचार्य तत्वज्ञानी होते थे। वस्तु

तत्व को जानते थे। प्रत्येक वस्तु के गुण और धर्म के विषय में उच्च कोटि का ज्ञानवान ही वस्तु के सही उपयोग का विधिकारक बन सकता है। जैसे लोहे के तत्व या गुण धर्म को जानने वाला ही उसके विभिन्न उपयोग की विधि को प्रयोग कर निकाल सकता है। इसी को हम तकनीक कहते हैं जिसे अंग्रेजों में Technology कहा गया है। अशोक का लौह स्तम्भ जिसे देखकर आज भी लोग आश्चर्य चकित हो जाते हैं इनकी लौह तकनीक की दक्षता का प्रत्यक्ष प्रतीक है। इसकी High Polish का एकमात्र वर्णन जैन औपपातिक सूत्र में पृथ्वी शिलापट के वर्णन में मिलता है।

पाटलीपुत्र से ताम्रलिप्त बंदरगाह तक के आवागमन के पथ पर ताम्र और लौह खदानों का होना इस क्षेत्र की समृद्धि का प्रमुख कारण रहा था। मैगस्थनीज ने Indica में मगध के साथ-साथ बंगाल के शक्तिशाली साम्राज्य का वर्णन किया है।

राढ़ बंगाल के विभिन्न स्थानों में शिव या धर्मराज रूप में जैन मूर्तियों को पूजे जाते देखा गया है। कहीं-कहीं तो जैन तीर्थकरों की भग्न मूर्ति ग्राम देवता के रूप में वृक्ष तले अधिष्ठित है। बाँकुड़ा जिले के तालडाँगरा थाने के देउलभिड़ा ग्राम की पाक-द्वादस सदी में निर्मित देउल मन्दिर पहले जैन मन्दिर ही था। इसका मुख्य विग्रह (पार्श्वनाथ) वर्तमान में भारतीय म्यूजियम में सुरक्षित है। इस गाँव का देउल मन्दिर नेंगटा ठाकुर (अर्थात् दिगम्बर पार्श्वनाथ) का मन्दिर नाम से परिचित है। ऊँदा थाने के बहुलाड़ा ग्राम का सिद्धेश्वर शिव का मन्दिर पहले जैन धर्म वालों का ही था इसके प्रमाण हैं। तालडाँगरा थाने के हाड़मासरा गाँव के परित्यक्त शिखर देउल के चारों ओर कभी जैन धर्म प्रतिष्ठित था इसके भी प्रमाण हैं अमियकुमार बन्दोपाध्याय के कथनानुसार “शिलावती के गतिपथ के थोड़ा उत्तर में आज का हाड़मासरा ग्राम कभी जैन धर्म का केन्द्र था। आलोच्य प्रत्नतात्विक वस्तुएँ उसका प्रमाण हैं। डिंहर, सोनातपल एकतेश्वर सर्वत्र एक ही बात लागू होती है। पुरुलिया जिले के वागमुण्डी थाना के देउली गाँव के जैन मन्दिरों में मूल मन्दिर के देवता तीर्थकर शान्तिनाथ आज भी लोक देवता इर्गुनाथ नाम से पूजे जाते हैं। अनेक बाँझ नारियों को इनकी कृपा से सन्तान प्राप्ति हुई है। मूर्ति के सम्मुख बकरे की बलि भी होती है। लौकिक देवों की पूजा की विचित्र रीति-नीतियों का भी यहाँ अनुसरण किया जाता है। वर्द्धमान जिले के मंगलकोट थाने के शंकरपुर गाँव के नेंगटेश्वर नाम से परिचित शिवमूर्ति का वर्णन इस प्रकार है— काले पत्थर से बनी साढ़े तीन फुट की मूर्ति के चारों ओर छः स्वास्तिक बने हुए है। वे दिगम्बर हैं एवं लिंग दृश्यमान है। पादपीठ के पद्म पर एक मृगमूर्ति ध्यान देने योग्य है। इनके भी भक्तों की संख्या कम नहीं है। मृग तो शान्तिनाथ का प्रतीक है जैसा कि पुरुलिया के वागमुण्डी थाने के देउली ग्राम के शान्तिनाथ मन्दिर में देखा गया। फिर भी पश्चिम बंग के पूजा-पार्वन और मेला ग्रन्थ के पंचम खण्ड के बत्तीसवें पृष्ठ में उल्लिखित शंकरपुर के नेंगटेश्वर को भोलानाथ परमेश्वर के रूप में ही घोषित किया गया। पूरे बंगाल में जहाँ प्राचीन खुदे प्रस्तर खण्ड, शिव या लोक-देवता के रूप में पूजित है उन्हें गहन रूप में पर्यवेक्षण करते ही असली रहस्य प्रकाशित हो जाता है। दुर्गापुर के विभिन्न स्थानों में देव-देवी रूप में जो सब प्रस्तर खण्ड या मूर्तियाँ हैं उनमें अधिकांशतः या तो जैन तीर्थकर मूर्तियों के भग्नांश हैं या वे जैन प्रभावयुक्त हैं।

बाँकुड़ा के रानीबाँध थाना के अम्बिकानगर की अम्बिका देवी, राईपुर थाना के राईपुर की महामाया, खातड़ा थाना की केचन्दार अम्बिका देवी, शिमलापाल थाने की जोड़सा और गोतड़ा की अम्बिका देवी जैन धर्म से सम्बन्धित हैं। ये सब लौकिक देवी रूप में ही पूजी जाती हैं। छान्दाड़ के निकटवर्ती पांचाल ग्राम की वृहद् परशा पुष्करिणी के साथ पार्श्वनाथ का सम्बन्ध स्पष्ट है। श्रद्धेय माणिकलाल सिंह द्वारा संग्रहीत इन तथ्यों के अतिरिक्त चुपामनसा के कपिलेश्वर शिव का गाजन और स्थानीय मनसापूजा के समय तीर्थकर मूर्ति खुदी एक जैन मन्दिर की प्रतिकृति की पूजा उल्लेखनीय है। यह घटना बड़जोड़ा थाना के मेटेली में भी देखी जाती है। पत्थर की इस क्षुद्राकार मन्दिर की प्रतिकृतियों में आदिनाथ, पार्श्वनाथ शान्तिनाथ और महावीर मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। (त्रिपुरा- बसु)

झाड़खण्ड के बुद्धिजीवी राधा गोविन्द माहात अपने “झाड़खण्डे धर्मान्तर अभियान ‘ओ समाज संस्कार आन्दोलन’ नामक एक प्रबन्ध में लिखते हैं— “जो कुछ हो, सराक जाति ने जैन धर्म ग्रहण किया और बहुत समय तक इस अंचल में धर्म की इस दीपशिखा को प्रज्वलित रखा। इनके हाथों निर्मित जैन मन्दिर एवं भूप्रस्तर रचित जैन मूर्ति सहित विभिन्न देव-देवियों की मूर्तियाँ आज भी बहुत जगह वर्तमान हैं। तत्कालीन निर्मित इसका भाष्कर्य शिल्प वर्तमान युग के मनुष्य को भी आश्चर्य चकित कर डालता है कारीगरों की सूक्ष्म निपुणता देखकर।”

इन सराक शिल्पकारों ने सिर्फ पूर्वी भारत में ही नहीं वरन् उससे संलग्न देशों वर्मा, कम्बोडिया, मलाया और चम्पा (वियतनाम) में भी पाषाण शिल्प भाष्कर्य को जीवित रखा। जिसको देखकर विदेशी इतिहासकार भी आश्चर्य चकित रह गये। वर्मा के पगोडा के सन्दर्भ में जेम्स फर्ग्यूसन की यह टिप्पणी महत्वपूर्ण है—

This may be considered a sufficient indication that they derived some, at least, of their architectural features, as well as their religion, from India ; but as this form was adopted by both Jains and Hindus in the north of India, from the mouths of the Indus to the Bay of Bengal in that age, it hardly enables us to point out the particular locality from which it was derived, or the time at which it was first introduced.

निश्चित रूप से यह सराक शिल्पीगण थे जो मूर्ति निर्माण करते थे। मगध से ताम्रलिप्त के पथ पर बिखरे पुराकीर्ति के निदर्शन साक्षी है इस बात के कि यहाँ पर भाष्कर्य शिल्पकला और मूर्ति निर्माण की कर्मशाला थी, जहाँ जैनाचार्य इन सराक शिल्पीकारों को मूर्तिकला की बारीकियों का ज्ञान देते थे। यहाँ से निर्मित मूर्तियाँ विदेशों में भी निर्यात की जाती थी। चीन, जापान, इन्डोनेशिया, वर्मा, थाइलैण्ड, जावा आदि देशों का इस अंचल से संबंध था। संभवतः ताम्रलिप्त से ही ये सब मूल्यवान शिल्पकला इन देशों में भेजी जाती थी। अंगकोरवाट के मंदिरों की बनावट, शैली तथा नागपूजा और तीर्थकरों की मूर्तियाँ इस बात का स्पष्ट प्रमाण है।

आज जो भी परम्परागत साहित्यिक स्रोत उपलब्ध है उनसे यह ज्ञात होता है कि इस प्रान्त के लोग प्राग ऐतिहासिक काल से तीर्थकरों के उपदेशों से परिचित थे। आदि तीर्थकर ऋषभदेव से प्रारम्भ होकर, सिन्धु कालीन अवशेषों का यहां पाया जाना, २३वें तीर्थकर पार्श्वनाथ तथा २४वें तीर्थकर भगवान महावीर का इस क्षेत्र में विचरण

करना, श्रेणिक, आजातशत्रु, नन्दराजाओं तथा मौर्य सम्राटों का बंगाल में प्रभाव, उस समय के पुरातात्विक अवशेषों का समग्र बंगाल में यहाँ तक कि सुन्दरवन के जंगलों में भी उत्खनन में मिलना जैन धर्म की बंगाल में प्राचीन काल से प्रतिष्ठा को दर्शाता है। आचार्य क्षितिमोहन सेन, प्रबोधचन्द्र सेन, श्री गोपीकृष्ण बसु तथा पी. सी. दासगुप्त आदि विद्वान हैं जिन्होंने साहसपूर्ण रूप से तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में सही बात कहने का खुलकर साहस किया जिनको मेरा बहुत-बहुत धन्यवाद है। जबकि अन्य लेखकों ने विभेदपूर्ण नीति का अनुकरण किया है और तथ्यों को तोड़-मरोड़कर पेश किया है। इन बंगाली विद्वानों ने अपने शोध पूर्ण लेखों में यह स्पष्ट लिखा है कि बंगाल का आदि धर्म जैन धर्म था। यहाँ के गांवों और जिलों के नाम भी इसकी पुष्टि करते हैं। २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ (८०० ई. पू.) से ७वीं शताब्दी तक का काल महत्त्वपूर्ण है। इस समय उद्भूत पराक्रमी, प्रजावत्सल, उच्च कोटि के साहित्यिक संरक्षक, शिल्पकला के वाहक, निर्भीक एवं सरल राजाओं का कित्त्व प्रत्यक्ष देखने को मिलता है। वीरभूमि, सिंहभूम और वर्द्धमान आदि जिले २४वें तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर की स्मृति को आज भी जीवन्त रखे हुए है। अन्तिम केवली जम्बूस्वामी की निर्वाण भूमि बंगाल में ही थी। प्रसिद्ध युनानी विद्वान मैगस्थनीज के उल्लेखों से बंगाल के महत्त्वपूर्ण जगहों का वर्णन मिलता है। उन्होंने जिन अनार्य जातियों का वर्णन किया था। उसमें बंगाल के बंग और पुण्ड्र जाति का उल्लेख है।

अमियकुमार बन्द्योपाध्याय ने लिखा हैं— “जैनों का धर्मग्रन्थ ‘कल्पसूत्र’ और बौद्धों के धर्म ग्रन्थ ‘बोधिसत्त्वावदान कल्पलता’ आदि से भी जाना जाता है कि ख्रिष्ट पूर्व काल से ही पुण्ड्रवर्द्धन प्राच्य देश में जैन धर्म का सर्वप्रधान केन्द्र था।” सम्राट चन्द्रगुप्त श्रमण संस्कृति के थे जिसका वर्णन जैन साहित्य में मिलता है तथा श्रवण बेलगोला में चन्द्रगिरि पर्वत के शिलालेखों से भी प्राप्त होता है। चन्द्रगिरि पर्वत पर बिन्दुसार द्वारा निर्मित मंदिर भी इसकी पुष्टि करता है। चन्द्रगुप्त के गुरु भद्रबाहु स्वामी बंगाल के थे। ताम्रलिप्त पर कलिंग का अधिकार अशोक के कलिंग आक्रमण का प्रमुख कारण था। बौद्धग्रन्थों से भी हमें मौर्य काल में बंगाल में निर्ग्रन्थों के प्रभाव का पता चलता है। उल्लेखनीय है कि “मौर्य राजागण जिस समय पाटलीपुत्र से बंग देश पर शासन करते थे उस समय इस देश में जैन धर्म ने इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी कि परवर्ती कई शताब्दियों तक उसका प्रभाव बना रहा।”

—बंगाल में जैन युग की स्मृति-श्री गोपेन्द्र कृष्ण वसु

हाथीगुम्फा लेख से यह विदित होता है कि उड़ीसा के राजा खारवेल के अधीनस्थ बंगाल के क्षेत्र भी थे। ई. सन् की दूसरी शताब्दी में पूर्वी भारत में मुरण्ड राजाओं का अधिपत्य करीब २४० वर्षों तक रहा। जैन, ग्रीक तथा चीनी साहित्य में भी इन राजाओं का विवरण मिलता है। ये राजा जैन धर्म के समर्थक थे। ई. पू. दूसरी शताब्दी के भरहुत की एक वैदिक लिपि में पुण्ड्रवर्द्धन का उल्लेख किया गया है। मथुरा में एक शिलालेख प्राप्त होता है जो दूसरी शताब्दी का है उसमें किसी राढ़वासी द्वारा तीर्थंकर की मूर्ति उत्सर्ग करने की बात लिखी हुई है। इस विषय में Dr. R.C. Mazumdar ने लिखा है— An inscription discovered at Mathura but now in Calcutta Museum, records the erection of a Jaina image in the year 62 at the request of a Jaina monk who was an inhabitant of Rara. Rara is very probably Radha, a well-known variant of Radha (in Bengal) and the date is to be referred to the Kusana era and therefore equivalent to about 150 A.D.

पहाड़पुर (प्राचीन सोमपुर) राजशाही जिले में (अब बंगाल देश) अवस्थित है। प्रत्नतात्विक खनन के

फलस्वरूप इस स्थान के भू-गर्भ से प्रथम स्तर पर बौद्ध, और द्वितीय स्तर पर जैन संस्कृति के बहुत से निदर्शन आविष्कृत हुए हैं। जिससे यह भली-भाँति प्रमाणित होता है कि- प्राचीनकाल में पहाड़पुर जैनों का एक धर्मकेन्द्र या तीर्थस्थान था। फिर इस स्थान को बौद्धों ने हस्तगत कर लिया। उस समय इस स्थान का बौद्ध विहार सोमपुर बिहार नाम से प्रसिद्ध था। पहाड़पुर के द्वितीय स्तर से आविष्कृत ताम्रलिपि से जाना जाता है कि इस स्थान के एक ब्राह्मण दम्पति ने १५९ वीं गुप्ताब्द (ख्रिष्टीय ४७८-७६) में वट गोहाली नामक ग्राम में निर्ग्रन्थों के मठ-निर्माण के लिए जैन श्रमण गुहनन्दी को भूमिदान किया था।

One of the most important records on Jainism in Bengal is the copper plate inscription from Paharpur (Rajshahi) in Bangladesh. Dated in the Gupta era 159 (478-79A.D.) it records a gift of land by a Brahmin couple for a Jaina Vihara at Vata-Gohali. The Vihara, i.e. the monastic establishment, belonged to the followers of Nirgranthanatha Acarya Guhanandin of the Pancastupa section of Banaras. On the site of this ancient Jaina Vihara was later on erected a Buddhist monument of outstanding plan and design which has been laid bare by excavation at Paharpur. It is possible that the great temple with the terraces and the paved platform in the centre was inspired by the symbolic construction of a Jaina shrine conforming to the architectonic type of a Caumukha. Such a suggestion was made by K.N. Dikshit, the excavator. "In this connection", says Prof. S.K. Saraswati, "we should also take into account a particular type of temples at Pagan in Burma, which may be described as an adaptation of Caumukha shrines of the Jainas." (The History of Bengal, edited by Dr. R.C. Mazumdar, Dacca 1943, p.507)

पहाड़पुर के भू-गर्भ से २६ विभिन्न आकार के स्तूप भी आविष्कृत हुए हैं। इनका जैनों से सम्बन्धित होना ही सम्भव है। इस प्रकार पहाड़पुर से पाये जाने वाले ताम्रपत्र से विदित होता है कि बंगाल में जैन धर्म गुप्त काल में प्रतिष्ठित था। "The next definite evidence of Jainism in Bengal is furnished by a copper-plate grant, dated year 159 (of the Gupta era and equivalent to 479 A.D) found in Paharpur in North Bengal. The grant records the endowment, by a Brahmana couple, of lands for the maintenance of worship with sandal, incense, flowers, lamps, etc. of the divine Arhats at the *vihara* of Vata Gohali which was presided over by the disciples and the disciples of the Nirgrantha Sramanacarya (Jaina preceptor) Guhanandin, belonging to the Pancastupa section (*nikaya*) of Kasi (Varanasi). This record proves the existence of a Jaina temple with images of the Arhats and a monastery, existing for at least three generations i.e., for nearly a hundred years, or more or since 4th century A.D. at the latest." पहाड़पुर का यह ताम्रपत्र लेख गुप्तकाल में बंगाल में जैन धर्म के प्रभाव का अकाट्य प्रमाण है। इस लेख में जम्बू देव का वर्णन यहाँ पर जम्बू स्वामी से सम्बन्धित मंदिर या चैत्य स्तूप की अवस्थिति भी दर्शाता है जो कि एक विद्वानों के लिये एक गंभीर शोध का विषय है।

अविभाजित बंगाल के पूर्वांचल में स्थित कुमिल्ला के निकट मयनावती नामक स्थान में गुप्तकालीन जैन विहार

का पता चला है। One Monastic recluse of the Jainas is said to have been found at mainamati, now in Bangladesh. - Smt. Bandana Saraswati Jainism in Bengal.

कलकत्ता से ३८ किलोमीटर उत्तर पूर्व में चौबीस परगना जिले में चन्द्रकेतुगढ़ अवस्थित है। जिसके अन्तर्गत बेराचम्पा, देवालया, शांतपुर, हादिपुर, जिक्रा, रानाखोला, घोरापोटा, धानपोटा, चुपरीझारा, मडुवाड़ी और गाजियातला हैं। इनमें बेराचम्पा में उत्खनन में ३०० ई० पू० के अवशेष प्राप्त हुए हैं जो इसे मौर्यकाल से जोड़ते हैं। यह गंगा के तट पर बंदरगाह था। यहाँ से विद्याधरी नदी १० मील दूर पर है जो आज मृतप्राय है। लेकिन जो वहाँ से समुद्र में जाने के लिए व्यापारिक मार्ग था। वहाँ पर उत्खनन में एक महत्वपूर्ण जिनमूर्ति मिली है और एक हाथी। जिसके विषय में श्री गौरीशंकर डे ने लिखा है कि—

Both the literary and archaeological evidences indicate that Bengal had an early association with Jainism. Jainism flourished in Bengal long before the Christian era and continued, in its full form, at least upto the 7th Century A.D..... Hence, any and every discovery of Jaina relics from this province deserves attention of archaeologists, historians, art-lovers and lay men alike. In this connection the torso of a Tirthankara found in the ruins of Chandraketugarh, a wellknown archaeological site of West Bengal, deserves special mention.

This is a torso of a Tirthankara with srivatsa mark on the chest. Its nudity, the stiff straight pose of its arms hanging down by its sides, indicative of the Kayatsarga attitude, characteristic of the Jainas, unmistakably prove that it is the image of one of the Tirthankaras.

In the above mentioned contexts, the torso from Chandraketugarh, which has the closest resemblance with the Lohanipur Torso, represents the oldest Jaina image extant in Bengal. So the importance of the said image is indeed great.

बंगाल के २४ परगना जिले में और भी प्राचीन जैन मूर्तियां मिली हैं जिसके विषय में लिखा है—

The present 24-Parganas represent one of the oldest parts of Bengal and was the meeting ground of different faiths. A considerable number of Jaina images have been discovered from both the northern and southern parts of the district. It is probable that some Jaina viharas also existed here in the past.

मुर्शिदाबाद जिले के फरक्का की खुदाई में जैन आयागपट्ट मिला है जिसके विषय में archeological Department के भूतपूर्व सुपरिटेन्डेन्ट पी. सी. दास गुप्ता ने लिखा है—

Thus, it will be found that the Nirgranthas gained a strong ground in Bengal as early as the age of the imperial Mauryas. As an emperor ruling from Pataliputra

Asoka was well aware of the popularity of the religion of the Nirgrantha and the institution of the Ajivikas. It may be noted that very recently a terracotta votive plaque visualizing the sacred wheel and the triratna flanked by what appears to be a goose has been unearthed at Farakka in Murshidabad district. On stylistic and stratigraphic grounds the object is datable to the Maurya-Sunga period. The plaque recalls the symbolic motifs of the jaina Ayagapattas.

बौद्ध साहित्य आर्य मंजुश्री कल्प के अनुसार शशांक शैव धर्मी था जिसने बंगाल से बौद्धों और जैनों को पलायन करने पर मजबूर किया। उसके अत्याचारों के फलस्वरूप जैनों को राजस्थान और गुजरात की तरफ जाना पड़ा।

यहाँ से जाते समय बंगाल, बिहार के प्रसिद्ध तीर्थों की प्राचीन मूर्तियाँ भी वे अपने साथ से गये और वहाँ पर प्रतिष्ठित कर दिया जो आज भी वहाँ पर है।

उन सब स्थानों के नामकरण पूर्वाचलों के तीर्थों के नाम पर कर दिए गए। जैसे—

१. नन्दीवर्द्धन प्रतिष्ठित क्षत्रिय कुण्ड की भगवान महावीर की मूर्ति नान्दिया में है।
२. ब्राह्मणकुण्ड की जिनमूर्ति ब्राह्मणवाड़ा में है।
३. भगवान महावीर के दीक्षा-स्थल की मूर्ति मुण्ड-स्थल में है।
४. दीपावली के दिन जिस स्थान पर भगवान महावीर ने निर्वाण प्राप्त किया उस पावापुरी की जिनमूर्ति दियाना में है।
५. वर्धमान की प्रतिमा वढ़वाण में है।
६. कोटिवर्ष नगर की कोटिक गच्छ की जिन-प्रतिमा कोटयार्क खड़ायता बीजापुर में है।
७. ऋजुपालिका की भगवान महावीर की सिद्ध स्थान की मूर्ति नाणा (नाड़ा) में है।

—जैन परम्परा का इतिहास, प्रकरण ३५, पृष्ठ १८२

परवर्ती काल में बंगाल के बचे हुए प्राचीन जैन निदर्शन या तो नष्ट कर दिये गये या उनका स्वरूप बौद्ध या शैव में परिवर्तित कर दिया गया।

We shall not be far wrong, if we suppose, that the torture and the persecution suffered by the Nirgranthas or Jainas were not less severe than that experienced by the Buddhists. For the Gauda king had destroyed all the 'Vasatis' or living places and rest houses of the Jainas through out the world i.e. through out his kingdom and expelled them (i.e. Nirgranthas or Jainas) there from. Further, it is this persecution, which is one of the many factors that lie behind the sudden eclipse of Jainism from Bengal for a period spreading over a century or more.

-- J.J. July 1981, p.12

बंगाली भाषा में अनेक शब्द ऐसे हैं जिनके साथ जैन पारिवारिक शब्दों का साम्य मिलता है। जैसे जैनों में पल्ली गाँव को कहते हैं बंगाल में आज भी गाँवों को पल्ली कहा जाता है। जैन साधु के उत्तरीय को पछेड़ी कहते हैं। बंगला में भी पाछुड़ी सम्बोधित करते हैं। जैन साधु जिस रजोहरण से धूल झाड़ते हैं उसको पीछी कहते हैं। बंगाल में झाडु को पीछी ही कहा जाता है। जैन ग्रन्थों की लिपि और पुरातन बंगला भाषा की लिपि में

अद्भुत साम्य है। बंगला भाषा की उत्पत्ति अर्धमागधी (प्राकृत) से ही हुई है। बंगाल के मनसा मंगल, चण्डी मंगल, धर्म मंगल आदिकाव्यों पर जैन प्रभाव स्पष्टतया दीख पड़ता है। मनसा देवी भगवान पार्श्वनाथ की शासन देवी पद्मावती ही है। बंगाल में कहीं-कहीं मनसा रूप में नागछत्रधारी पार्श्वनाथ भी पूजे जाते हैं। मनसा मंगल में बेहुला की कथा श्रीपाल चरित्र कथानक का स्मरण कराती है। यतीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय के अनुसार बंगाल में मीननाथ से जो नाथ सम्प्रदाय का आरम्भ हुआ वह जैनियों के तीर्थकरों तथा उनके शिष्य सम्प्रदाय से हुआ है। मीननाथ के गुरु थे आदिनाथ अर्थात् ऋषभनाथ। बंगाल की रामायण के कथानक में जैन रामायण की छाप स्पष्ट दिखती है।

अंग, बंग, कलिंग और मगध की धरा पर जो दर्शन पल्लवित हुआ वह इतना मुखर था कि उसने सारे विश्व में अहिंसा की चेतना को जागृत किया। यदि भारत की सांस्कृतिक परंपरा से इस क्षेत्र की संस्कृति को अलग कर दिया जाय तो हमारे गौरव का दीप धूमिल पड़ जायेगा। तीर्थकरों ने इस धरा को अपने अनन्त करुणा, असीम वात्सल्यता से सींचा और साधना, तप और त्याग द्वारा प्राप्त ज्ञान के आलोक में अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जिसके लिए हम पूर्वी भारत की धरा के चिर ऋणी रहेंगे।